जुलाई २००१ Rs. 10/-

चन्दामामा

चन्दामामा

सम्पुट - १०४ जुलाई - २००१ सञ्चिका - ७

अन्तरङ्गम्

इस माह का विशेष

अमिट दाग़ (वेताल कथा)

तलवार का धनी

कृष्णभूपति कथा

यक्ष पर्वत

Printed and Published by B. Viswanatha Reddi at B.N.K Press Pvt. Ltd., Chennai–600 026 on behalf of Chandamama India Limited, No.82, Defence Officers Colony, Ekattuthangal, Chennai - 600 097. Editor: Viswam

नई क्लास, नई किताबें, नए दोस्त...
और क़दमों में नई शान.
रिलैक्सो स्कूलमेट शूज़.

हर बार स्कूल खुलने की शुरुआत बच्चे करते हैं नए उत्साह और नई उमंगों के साथ. नई किताबों, नए टीचर्स और नए-नए दोस्तों के साथ. और स्कूल से लेकर खेल के मैदान तक-हर क़दम पर उनका साथ देते हैं नए रिलैक्सो स्कूलमेट शूज़. मजबूती में बेमिसाल. क्वालिटी में बेजोड़. इसलिए अगर आपके बच्चे नई क्लास की तैयारी कर रहे हैं तो उन्हें जरूर दिलवाएं नए रिलैक्सो स्कूलमेट शूज़. आज ही!

SCHOOL MATE

खूब फ़न, खूब दम. हर क़दम.

स्कूलमेट 03 (बॉय) सफ़ेद, काला.
रू.139.95 से रू. 239.95
साइज 7-10, 11-1, 2-4, 5-7, 8-10 (L).

स्कूलमेट 03 (गर्ल) सफ़ेद, काला.
रू.139.95 से रू.199.95
साइज 7-10, 11-1, 2-4, 5-7.

एथलीट (सफ़ेद, काला, नीला)
रू.74.95 से रू.109.95
साइज 6-8 (B), 9-2, 3-5, 6-10.

(न्यू) एन. यू. टेनिस (सफ़ेद, काला)
रू.67.95 से रू.97.95
साइज 9-2, 3-5, 6-10.

संस्थापक
चक्रपाणि, बी. नागि रेड्डी

चरित्र निर्माण

आज से '५४ वर्ष पूर्व जुलाई माह में ही चन्दामामा का आरम्भ हुआ था। उस समय सभी को यह पता था कि बच्चों को तीन 'आर' पढ़ाए जाते थे - रिदमटिक, रीडिंग और राईटिंग। लेकिन कुछ सालों बाद चौथा आर भी जुड़ गया, जो कम्प्यूटर से आया। एक सभा को सम्बोधित करते हुए भारत के एक महान हस्ती ने कैरेक्टर (चरित्र) के आर को बताया और कहा कि सभी कुछ बच्चों को पढ़ाया जा चुका है लेकिन चरित्र नहीं।

चरित्र को समझाया या उसका उपदेश तो दिया गया है, परन्तु उसे ढंग से पढ़ाया नहीं गया। वह चरित्र को उत्साह की भाँति बताएँगे। सौहार्द, त्याग, देशप्रेम और इनसे भी बढ़कर सदाचार है जो चरित्र को पढ़ाने के बदले उसको कार्यान्वित करने में सहायता करेगा।

हमारे महाकाव्य, पुराण, अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ, परम्पराएँ, लोक कथाएँ और ऐतिहासिक तथ्य इन सब विशेषताओं से भरे पड़े हैं। देवी और देवताओं ने अपने अवतारों और पृथ्वी पर अपने मानव जीवन के द्वारा मानवता की रक्षा के लिए इन विशेषताओं का प्रचार किया।

एक वह समय था जब ये बातें एक गुरु की शरण में रहकर सीखी जाती थीं। जो अपने जीवन तथा महान व्यक्तित्वों के जीवन के उदाहरण देकर ये बातें बताते थे। हमें इस युग में वैसे गुरु मिलना असम्भव है। अन्ततः यही किया जा सकता है कि उन उदाहरणों का अध्ययन किया जाए और मानव मूल्यों को समझा जाए।

चन्दामामा के पाठकों ने हमेशा यह कहा है कि पिछले पाँच दशकों में जो कहानियाँ पत्रिका में प्रकाशित की गई हैं ये मानव-मूल्यों का अभिन्न उदाहरण हैं। जो उन्हें सही राह दिखाती हैं। जहाँ शिक्षा संस्थान इस कार्य में असफल रहे हैं वहाँ चन्दामामा इस दूरी को भरने का दावा करता है। चन्दामामा शीघ्र ही शिक्षा क्षेत्र में उतरेगा और कहानियों के माध्यम से ज्ञान बृद्धि के लिए प्रसिद्ध विषयों को चुनेगा।

ऐसा भी होगा कि शीघ्र ही ''चन्दामामा द्वारा चरित्र निर्माण'' का नारा देश के कोने-कोने में गूँजने लगेगा।
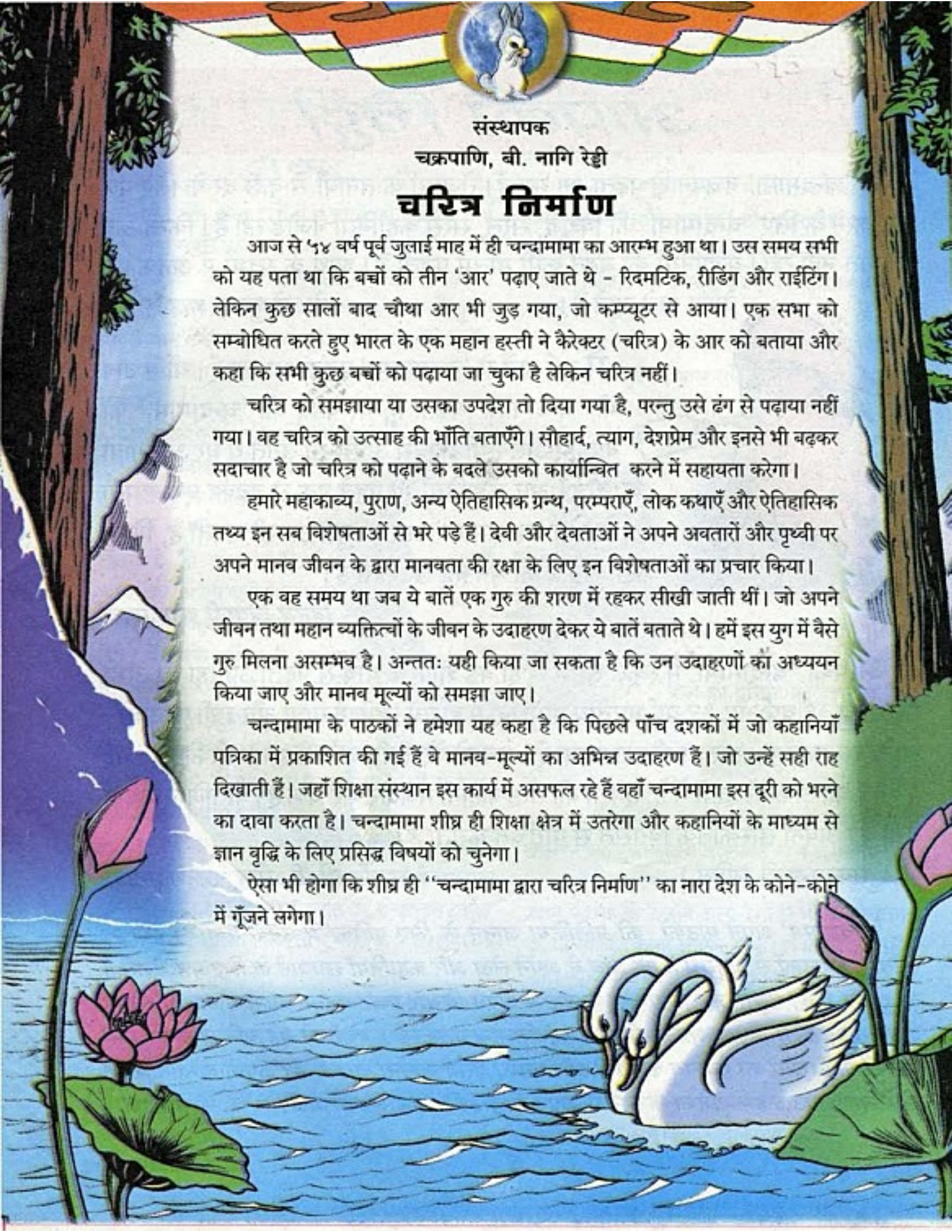
आपकी चिट्ठी

मैं 'चन्दमामा' बचपन से पढ़ता आ रहा हूँ। रोजमर्रा के तनावों से कुछ देर के लिए पूर्ण मुक्त करने के लिए 'चन्दामामा' की विशुद्ध, सरल, सरस कहानियाँ बेजोड़ रही हैं। किन्तु अब वह बात नहीं रही। कहानियों की बहुत कमी मालूम पड़ती है। व्यर्थ के स्तंभों में अनेक पृष्ठ बेकार चले जाते हैं।

- के. सेनगुप्ता, शाहजहापुर.

मैं कई वर्षों से 'चन्दामामा' पढ़ता आ रहा हूँ। यों मैं अब भी 'चन्दामामा' पढ़ता हूँ, पर पहले की 'चन्दामामा' की बात ही अलग थी। सबसे अच्छे तो लगते थे घर और गाँवों के चित्र। और कहानियाँ भी पहले एक से बढ़कर एक छपती थी। वैसे तो 'चन्दामामा' अब भी मुझे अच्छी लगती है, किन्तु कहीं कुछ है जो मन को खटकता है।

- विनय त्रिपाठी,इलाहाबाद.

आपका 'चन्दामामा' मैं स्कूल समय से ही बड़े शौक व चाव से पढ़ता आ रहा हूँ। अभी मेरी आयु ३६ वर्ष और १९ वर्ष भारतीय वायुसेना में हो गये। हमेशा यात्रा और छुट्टी पर आते-जाते 'चन्दामामा' अवश्य खरीदता पढ़ता हूँ। अब तो मेरे बीबी, बच्चे भी इसके शौकीन हैं। मई २००१ का अंक मेरे हाथों में है, हमेशा की तरह कहानी मजेदार व रोचक है। पौराणिक कथाएँ बच्चों को अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराती है।

शुभकामनाओं सहित !

- सार्जेंट बी.पी. सिंह, अहमदाबाद.

'चन्दामामा' अपने पाठकों की प्रतिक्रिया जानने के लिए पत्रिका में उनके पत्रों का स्वागत करता है। पाठकों से अनुरोध है कि, जब वे अपने लेख और कहानियाँ छपवाने के लिए पत्र भेजते हैं तो अलग भेजें। परन्तु जब वे पत्रिका के बारे में अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं अथवा सलाह देना चाहते हैं तो कृपया अपने दृष्टिकोण को आलोचनात्म रखें। बच्चों की यह पत्रिका अपने नन्हें पाठकों के विचारों का स्वागत करती है और उनकी पसंद जानना चाहती है। कृपया चन्दामामा के सभी बाल-पाठक हमें पत्रिका के बारे में अपने विचार लिखकर अवश्य भेजें। - संपादक.

इस माह जिनकी जयंती है

शंकर

भारत और अन्य देशों में शंकर ने जो पुरस्कार प्राप्त किए उनमें सबसे महत्त्व रखता है पोलैण्ड के बच्चों द्वारा दी गयी उपाधि *'ऑर्डर ऑफ स्माईल'*। उन्होंने १९७७ में अंतर्राष्ट्रीय बाल प्रतियोगिता के संस्थापक शंकर को चुना। यह सम्मान उन्होंने एक भव्य समारोह में प्राप्त किया और तभी यह प्रतिज्ञा की कि ''बच्चों के लिए खुशी लाना'' उनका कर्तव्य हैं।

के. शंकर का जन्म केरल के ट्रैवंकोर स्थान के एक रूढ़िवादी परिवार में १९०२ में हुआ। जैसा कि केरल में प्रसिद्ध है कि बच्चा माँ के परिवार का नाम लेकर चलता है, तो शंकर अपनी माँ के चाचा तथा अपनी नानी के साथ रहे। एकमात्र बच्चा होने के कारण शंकर के मित्रों में उनके आँगन में आनेवाली तितलियाँ और पक्षी थे। एक बार विद्यालय में उनके गणित के अध्यापक ने बच्चों को सवाल हल करने के लिए देने के बाद, अपना पैर मेज पर फैलाया और सो गए। शंकर ने यह चित्र बना लिया। यहीं से शंकर कार्टूनिस्ट का जन्म हुआ।

१९२६ में बॉम्बे में स्नातक की डिग्री हासिल करने के बाद शंकर ने अपने कार्टूनों को समाचार पत्रों में छपवाना आरम्भ किया। १९३२ में जब उन्होंने *'दि हिन्दुस्तान टाईम्स'* में कार्य करना आरम्भ किया तो वे भारत के प्रथम समाचार पत्र के कार्टून विभाग के सदस्य थे।

शीघ्र ही भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। शंकर ने भारत का पहला कार्टून जर्नल *'शंकर वीकली'* आरम्भ किया। मई १९४८ में इसके पहले अंक का लोकार्पण करते हुए पंडित नेहरु ने उनसे कहा, ''शंकर मुझे दूर मत रखना!'' तब से १९६४ तक इस *वीकली* में पं. नेहरु के १,५०० कार्टून छपे। जो एक कार्टूनिस्ट तथा एक पत्र के लिए उच्चमान हैं।

१९४९ में उन्होंने *वीकली* में भारत के बच्चों द्वारा बनाई गई पेंटिंग आदि आमंत्रित की। पहला बाल अंक उसी बर्ष दिसम्बर में निकला। दूसरे बर्ष १३ देशों के बच्चों ने प्रविष्टियाँ भेजी। यह अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता अब तक ५५ बर्ष पूरे कर चुकी है।

शंकर ने १९५० से बच्चों की कला की प्रदर्शनी आरम्भ की। बच्चों में पूर्ण विश्वास रखनेवाले शंकर ने दिल्ली में तत्काल पेंटिंग प्रतियोगिता आरम्भ की। यह राजधानी का वार्षिक उत्सव ही बन गया।

उसके बाद उन्होंने बाल पुस्तक ट्रस्ट की स्थापना आरम्भ की जिसके लिए उन्होंने नेहरु के घर नई दिल्ली पर ५ कहानियाँ लिखी। सभी भाषाओं को मिलाकर ट्रस्ट का प्रकाशन हजारवाँ पड़ाव पूरा कर रहा है।

बच्चों की प्रतिभा को बढ़ाने के लिए उन्होंने १९६८ में एक पत्रिका भी आरम्भ की जिसका नाम था *'चिल्ड्रेन बर्ल्ड'*। बहुत सारे पन्नों की यह पत्रिका बच्चों द्वारा लिखित कहानियों और चित्रों की संकलित माला थी। १९६५ में शंकर ने बच्चों के लिए खासकर एक पुस्तकालय और पढ़ने का कक्ष बनाया।

हंगरी में जब उन्हें एक पारम्परिक गुड़िया उपहार स्वरूप प्रदान की गई तो उन्होंने अन्य देशों से भी ये परम्परागत गुड़ियाँ एकत्रित करना आरम्भ किया। शंकर का अंतर्राष्ट्रीय 'डॉल म्यूजियम' दिल्ली के नेहरु हाऊस में स्थापित है। इस म्यूजियम में ८००० गुड़ियाँ रखी गई हैं, जो १०० देशों का संकलन हैं। यह म्यूजियम पूरे विश्व में अपने तरीके का एक ही है।

शंकर का देहान्त २६ दिसम्बर १९८९ में हुआ। उन्होंने बच्चों की मुसकान बढ़ाई। आप क्या कहते हैं?

वेताल कथा

अमिट दाग़

धुन का पक्का बिक्रमार्क पुनः पेड़ के पास गया। पेड़ से शव को उतारा और अपने कंधे पर डाल लिया। यथावत् वह श्मशान की ओर बढ़ने लगा। तब शव के अंदर के बेताल ने कहा, ''राजन्, किसका भला करने के उद्देश्य से इस भयानक रात में, वह भी एक श्मशान में इतनी कड़ी मेहनत कर रहे हो? बहुत सोच-विचारने के बाद भी तुम्हारी समस्या मेरी समझ में नहीं आयी। बहुत पहले की बात है।

गदाधर नामक एक व्यक्ति अपने रिश्तेदारों को बहुत चाहता था। उनके साथ उसके बहुत ही अच्छे संबंध थे। उसने इसी बंधु प्रीति के वश में आकर असहाय स्थिति में डूबी वंदना नामक एक लड़की की सहायता की। और अंत में सबकी हंसी-

मज़ाक का पात्र हो गया। मैं हृदयपूर्वक नहीं चाहता कि तुम्हारी भी ऐसी दुर्दशा हो। तुम्हें सावधान करने के लिए उसकी कहानी सुनाता हूँ।

चक्रपुर में गदाधर व शरभ नामक दो मित्र रहा करते थे। शरभ संपन्न था, पर किफ़ायती था, मितव्ययी था। ज़रूरत पड़ने पर ही अपने लिये खर्च करता था। अन्यों को सहायता करने में हिचकिचाता नहीं था।

गदाधर, शरभ से अक्सर कहा करता, "मरते-मरते क्या यह सारी संपदा अपने साथ ले जाओगे? जब तक ज़िन्दा हो, आराम से ज़िन्दगी गुज़ारो। तुम्हारे पास धन है पर क्या फ़ायदा? तुम इतना भी नहीं जानते कि उसे कैसे खर्च करना चाहिए। इस बात में मैं तो बड़ा ही भाग्यवान निकला।" यों कहकर उसका मज़ाक उड़ाया करता था।

इस पर शरभ कहता था, "किसी भी प्रकार का अनुभव आनंद प्राप्त करने के लिए ही है। है न? उस आनंद का अनुभव मैं पूरा-पूरा कर रहा हूँ। तुम अपने आनंद से भी अधिक मुझे लेकर परेशान हो रहे हो। तुम्हें मेरी चिंता लगी हुई है। इसकी वजह है तुम्हारे कर्ज़ और मेरी संपदा। जितना है, उसी में सुखी रहो। परोपकार का नाम लेते हुए इतना व्यय न करो, जिससे तुम्हारा दीवाला निकल जाए। किसी पर निर्भर रहना बहुत बुरी बात है। ऐसे ही खर्च करते रहोगे तो वह दिन भी तुम्हें देखने को मिलेगा। दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाओगे। मेरी बात सुनो। अपनी हद में रहो। मेरी तरह धन, संपदा सुरक्षित रखो!"

गधाधर ने उसकी बात काटते हुए कहा, "मैं परोपकारी हूँ। परोपकार के लिए भी मैंने कर्ज़ लिये। जब परोपकार करने लगता हूँ, अपने आपको भूल जाता हूँ। इसीलिए मेरे पास कोई संपदा नहीं रही।"

"देखो गदाधर, तुम्हें देखकर मुझे दया आती है। यह कहकर अपने आपको धोखा दे रहे हो कि मैं जो भी खर्च कर रहा हूँ, वह परोपकार के लिए कर रहा हूँ। यह तो अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार लेने के समान है। मैं तुम्हारी भलाई चाहता हूँ। मान जाओ कि तुम अपव्ययी हो। अब ही सही, इस ग़लती को सुधार लो। इसी तरह डींग हांकते रहोगे तो तुमपर अमिट दाग़ लग जायेगा और लोग तुम्हें भला-बुरा कहेंगे।" शरभ ने यों कहकर उसे सावधान किया।

गदाधर को मालूम है कि शरभ उसकी भलाई चाहनेवालों में से है। इसलिए अपने दोस्त की बातों का बुरा न मानते हुए उसने कहा, "शरभ, भगवान ने मनुष्य को भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव प्रदान किये। हर एक में अलग-अलग प्रवृत्तियाँ होती हैं। तुम्हारी मेरी पद्धति से अलग है। चाहे वह सोचने की या काम करने की। अच्छा इसी में है कि हम आगे इसे लेकर आपस में चर्चाएँ करते न रहें" उसने

यों साफ-साफ कह दिया।

फिर इसके बाद उन्होंने कभी भी न तो धन के बारे में बात की, न ही खर्च के बारे में। पर अप्रत्याशित भूकम्प आया। सारे के सारे घर धराशायी हो गये। सब कुछ बरबाद हो गया। कितने ही लोग मर गये और कितने ही बच्चे अनाथ हो गये।

ऐसी स्थिति में एक आदमी वंदना नामक दस साल की बच्ची को चक्रपुर ले आया। भूकंप के कारण वह अनाथ बन गयी है। दुनिया में उसका अपना कोई नहीं रह गया। गदाधर उसका दूर का रिश्तेदार है। उस समय गदाधर परिवार सहित तीर्थ यात्रा पर गया हुआ था। शरभ को जब इसकी जानकारी मिली तब उसने कहा, ''गदाधर का रिश्तेदार मेरा भी रिश्तेदार है। वह लड़की उसके लौटते तक मेरे घर में रहेगी'' जो आदमी उस लड़की को ले आया था, वह उसे शरभ को सौंपकर चला गया।

भूकंप के प्रलय को वंदना ने अपनी आँखों देखा था। इसलिए वह डर गयी, उसे बड़ा धक्का लगा। शरभ ने वैद्य से उसकी जाँच करवायी तो वैद्य ने कहा, ''इसके दिल को धक्का लगा है। कुछ सालों तक इसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करना नहीं चाहिए।''

इतने में गदाधर तीर्थ-यात्राएँ पूरी करके गाँव लौट आया। शरभ से सारी बातें जानने के बाद उसने कहा, ''तीर्थ यात्राओं के दौरान मैंने बहुत दान-धर्म किये और बहुत-सा धन खर्च कर दिया। इस स्थिति में किसी एक और की परवरिश करना मेरे लिए संभव नहीं है। तिसपर वंदना एक लड़की है। इसके लिए सोने के गहने रेशमी कपड़े खरीदने होंगे। योग्य पति को ढूँढ़ना होगा।

तुमने अनावश्यक मुझपर और बोझ डाल दिया।

अगर मैं उस समय रहता तो उसी आदमी के साथ वंदना को भेज दिया होता।''

शरभ ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, ''भगवान की दया से मेरी हालत थोड़ी-बहुत ठीक है। तुम्हें अगर एतराज न हो तो वंदना को अपने घर में ही रखूँगा और उसकी परवरिश करूँगा। उसकी जिम्मेदारी मैं संभालूँगा।''

''मेरे रिश्तेदार की जिम्मेदारी तुम संभालोगे तो मेरी बदनामी होगी। इसलिए तुम्हें सबको बताना होगा कि वंदना मुझसे ज्यादा तुम्हारे नज़दीक की है।'' गदाधर ने शर्त रखी। शरभ ने गंगाधर की शर्त मान ली।

यों छः महीने बीत गये। इतने में स्वर्णपुर से शरभ को बुलावा आया। उस देश का राजा जानना चाहता था कि स्वर्णपुर को जो सहायता पहुँचायी जा रही है, उसका सही उपयोग किया जा रहा है या नहीं। इसके लिए उसे एक समर्थ और

अपने ही घर में रखूँगा और पालूँगा-पोसूँगा। वंदना की जिम्मेदारी संभालूँगा।''

''गदाधर, तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही करूँगा। तुम तो जीवन पर्यंत वंदना की जिम्मेदारियों को संभालने का वादा कर रहे हो, पर यह तुमसे नहीं हो सकेगा। अपने वादे का पालन कर नहीं पाओगे। इसलिए जब कभी भी तुम्हें धन की ज़रूरत पड़ेगी तब मैं सहायता करता रहूँगा।'' फिर उसने वंदना को गदाधर के सुपुर्द किया और सपरिवार स्वर्णपुर के लिए निकल पड़ा।

साल में एक बार शरभ वंदना को देखने चक्रपुर आया करता था। किन्तु यह देखकर उसे बड़ा दु:ख हुआ कि वंदना गदाधर को अपना मानती है और उसे पराया।

यों कुछ साल गुज़र गये। शरभ को जब से लगने लगा कि वंदना उसे पराया मानने लगी है, उसे देखकर मुँह मोड़ लेती है तब से चक्रपुर आना-जाना उसने बंद कर दिया। किन्तु ज़रूरत पड़ने पर गदाधर को धन देने में कभी भी कोई आनाकानी नहीं की।

एक बार शेखर नामक एक महाकवि स्वर्णपुर आया। उसके मुख पर इमली के बीज के समान का एक काला दाग़ था। उसने निश्चय कर रखा था कि जब तक वह दाग़ मिट न जाए तब तक शादी नहीं करूँगा। यह जानकर शरभ को अचरज हुआ और सोचने लगा कि भगवान प्रदत्त यह दाग कैसे मिट सकता है।

''वह भगवान का दिया हुआ दाग नहीं है। मैं जब विद्याभ्यास कर रहा था तब अपने गुरु द्वारा रचित काव्य को स्वरचित काव्य कहकर ज़मींदार से सम्मान पाया। इस पर मेरे गुरु नाराज़ हो गये और यह कहकर मुझे श्राप दिया कि तुम्हारा अपराध

विश्वासपात्र आदमी की ज़रूरत आ पड़ी। उन्होंने ऐसे व्यक्ति को चुनने के लिए अपने अधिकारियों को अलग-अलग गाँवों में भेजा। जो अधिकारी चक्रपुर आया, ग्रामाधिकारी ने शरभ को इसके लिए योग्य बताया। अधिकारी के कहे अनुसार राजा ने शरभ को स्वर्णपुर में राज-प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त किया।

शरभ ने तुरंत इसे स्वीकार किया। पर स्वर्णपुर का नाम लेते ही वंदना भय से थरथर कांपने लगती थी। उसे वैद्य की बातें याद आयीं और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करेगा।

ऐसी स्थिति में गदाधर खुद शरभ के पास चला आया और बोला, ''मैं तुम्हारी नाजुक हालत को ताड़ गया हूँ। परोपकार के नाम पर मैंने बहुत कर्ज़ किये और यह तुम जानते भी हो। अगर तुम मेरे सारे कर्ज़ चुका दोगे तो जीवन पर्यंत वंदना को

दाग़ बनकर तुम्हारे चेहरे पर ही व्याप्त रहेगा । उन्होंने शाप विमोचन का मार्ग भी बताया। उसके अनुसार जो दूसरों के बड़प्पन को अपना बड़प्पन कहकर विश्वास दिलायेगा, उसे मैं अगर पहचान सकूँ तो यह दाग़ मेरे मुख से निकल जायेगा और उसके मुख पर लग जायेगा। आज तक ऐसे व्यक्ति से मैं मिल नहीं पाया।'' शेखर ने स्पष्ट रहस्य खोल दिया।

तब शरभ ने कहा, ''तुमसे ग़लती हुई होगी पर तुमने अपनी ग़लती मान ली। अब सचमुच ही तुम महाकवि बन गये। यह दाग़ तुम्हारे चेहरे पर अच्छा लगता है, तुम्हारे चेहरे की शोभा को बढ़ाता है। तुम जैसे सुयोग्य व्यक्ति के लिए चक्रपुर में विवाह योग्य एक कन्या हैं वह अब अठारह साल की है। वंदना उसका नाम है। तुम उससे शादी करोगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी।''

''मेरे इस दाग़ को देखकर लोग चिढ़ते हैं। उनमें मेरे प्रति अप्रसन्नता आप ही आप पैदा हो जाती है। अगर बंदना मुझसे अप्रसन्न न हो, मेरे इस दाग़ पर उसे कोई एतराज न हो तो मैं उससे शादी करने तैयार हूँ। चलिए, आज ही चक्रपुर चलते हैं'' शेखर ने उतावला होकर कहा।

शरभ थोड़ी देर तक सकपकाया रहा और फिर बोला, ''पता नहीं क्यों, बंदना मुझे नहीं चाहती। वह मुझसे अप्रसन्न है। पहले ही मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि गदाधर और बंदना में क्या रिश्ता है। तुम और बंदना में बात हो जाए और वह शादी करने के लिए तैयार हो तो ठीक समय पर मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा।''

शेखर दूसरे ही दिन चक्रपुर पहुँचा। गदाधर विषय जानकर बहुत खुश हुआ। बंदना को शेखर अच्छा लगा। विवाह का मुहूर्त भी तुरंत पक्का हो गया। शरभ को इसकी ख़बर भेजी गयी। वैभवपूर्वक

विवाह कराने के लिए आवश्यक धन लेकर शरभ चक्रपुर आया।

गदाधर की कोई बेटी नहीं थी। इसलिए उसी ने कन्या दान किया। विवाह के बाद वर-वधू को चाहिए कि वे बड़ों के पैर छुयें और आशीर्वाद लें। शेखर जब पहले शरभ के पैर छूने आगे बढ़नेवाला था, तब बंदना ने उसे रोका और कहा, ''भूकंप के बाद इस गाँव में मुझे आश्रय मिला, शरभजी की वजह से। पर मेरे लिए अपना जीवन ही समर्पित किया है गदाधरजी ने। अतः हमें पहले पैर छूना है गदाधर जी के।'' इसके बाद ही शरभजी की बारी आती है। पहले हम गदाधरजी के पैर छूयें।''

शेखर कुछ कहने ही वाला था कि इतने में एक विचित्र घटना घटी। देखते-देखते गदाधर के गाल पर एक काला दाग़ निकल आया। शेखर के चेहरे से वह दाग़ ग़ायब हो गया।

बेताल ने कहानी सुनाने के बाद कहा, ''राजन्,

गदाधर ने वंदना की परवरिश उत्तम ढंग से की। यहाँ तक कि वंदना शरभ को भूल भी गयी। वंदना ने उसके घर को अपना घर समझा और बड़े ही आनंद के साथ वहाँ रहने लगी। उसने वहाँ कोई कमी महसूस नहीं की। शरभ किसी और जगह पर रहता था, पास रहकर या रखकर उसकी देखभाल नहीं की। इसी कारण वंदना ने गदाधर को प्रथम स्थान दिया। और यह न्यायसंगत भी है। अगर यह अन्याय माना भी जाए तो इसे वंदना का ही अन्याय माना जाना चाहिए। परंतु वह अमिट दाग़ गदाधर के चेहरे पर प्रकट हो, यह कहाँ का न्याय है? मेरे इन संदेहों के समाधान जानते हुए भी चुप रहोगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।''

विक्रमार्क ने उसके संदेहों की निवृत्ति करने के उद्देश्य से कहा, ''शरभ नहीं होता तो चक्रपुर में वंदना के लिए कोई स्थान ही नहीं होता। शरभ ने गदाधर को वचन दिया था कि मैं अपनी तरफ़ से पूरी तरह से तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम्हें धन की कमी महसूस होने नहीं दूँगा। इस वचन के बाद ही गदाधर वंदना को अपने घर ले गया। इसके कई सबूत मौजूद हैं कि वंदना हालांकि उसकी ही दूर की रिश्तेदार है, पर गदाधर यही मानता रहा कि वंदना की जिम्मेदारी मेरी नहीं बल्कि शरभ की है। वंदना अगर स्वर्णपुर जाने से न डरती तो वह शरभ के ही यहाँ पलती। वंदना की आड़ में गदाधर ने अपने सारे कर्ज़ चुका दिये। उसकी स्थिति में सुधार आया। इतना सब कुछ होते हुए भी चूँकि गदाधर ने उसे अपने ही घर में रखकर उसकी परवरिश की, इसलिए उसे ही प्रथम स्थान मिला। और यह कोई अनुचित बात भी नहीं है। परंतु वंदना की बातों से यह स्पष्ट है कि वह यह नहीं जानती, कि उसकी परवरिश में शरभ का कितना हाथ है और वह क्या है। इसका यह अर्थ हुआ कि गदाधर ने शरभ के बारे में उससे कुछ नहीं बताया। उसने यह भी कहा होगा कि यह सब कुछ मैं ही कर रहा हूँ। इसी कारण वंदना, शरभ को देखकर मुँह मोड़ लेती थी और उसे पसंद नहीं करती थी।

वंदना की परवरिश के बारे में शेखर ने शरभ से सब कुछ सुन रखा था। अब शेखर को वंदना की बातों को सुनने के बाद यह जानने में देर नहीं लगी कि शरभ की उदारता को गदाधर ने अपनी उदारता बतायी होगी और यह सच भी है। इसी वजह से वह दाग़ गदाधर के मुख पर प्रकट हुआ।''

राजा के मौन-भंग में सफल बेताल शव सहित ग़ायब हो गया और फिर से पेड़ पर जा बैठा।

(आधार-सुमति भट्टाचार्य की रचना)

यक्ष पर्वत

7

(समरबाहु और उसके अनुचर को रीछ के गिरोहवाले बिल के अंदर ले गये। खड्ग जीवदत्त एक ऐसी जगह पर पहुँचे, जहाँ से धुआँ निकल रहा था। वे जान गये कि यह बिलदुर्ग है, तो उन्होंने अंदर प्रवेश किया। भल्लूक के आदमियों ने उन्हें पकड़ लिया और उन दोनों को एक सुरंग मार्ग से होते हुए भेड़ियों की चट्टान के पास ले गये। अब आगे-)

अंधेरा ही अंधेरा था। रीछ के गिरोहवाले खड्ग जीवदत्त को सुरंग मार्ग से कुछ दूरी तक ले गये। फिर एक जगह पर रुक गये। रीछ के गिरोह के एक आदमी ने अपने साथी से कहा, ''भैय्या, लगता है कि ये दोनों आदमी समझ रहे हैं, भेड़ियों की चट्टान कोई विनोद स्थली है। पहले जिन्हें पकड़कर हम ले आये, वे भेड़ियों की चिल्लाहट सुनकर ड़र से थरथर काँपते थे। क्या हम इन्हें दिखायें कि यह भेड़ियों की चट्टान आख़िर है क्या?''

''ठीक है, चलो, चखायें उसका मज़ा'' दूसरे आदमी ने कहा।

पहले आदमी ने तुरंत गुफ़ा के ऊपर की अंकुड़ी अपनी पूरी ताक़त लगाकर खींची। दूरसे ही क्षण एक दरवाज़ा खुला और इससे सुरंग में रोशनी फैल गयी।

इस रोशनी में जीवदत्त ने सुरंग मार्ग को सुस्पष्ट रूप से देखा और कहा, ''खड्ग, हमने ग़लत समझा था कि यह बिल छोटा है। यह तो बहुत ही बड़ा व विस्तृत है। बाहर के लोगों को यह मालूम भी नहीं हो सकता कि इतने लोग इस बिल में रह सकते हैं।''

उसकी इन बातों पर रीछवाला ज़ोर से हंस पड़ा और कहने लगा, ''तुम बड़े ही सूक्ष्मग्राही

नहीं जानते कि यह बाहु कौन है, पर इतना तो ज़रूर जानते हैं कि उसे और उसके अनुचर को थोड़े ही समय में भेड़िये नोच डालेंगे और निगल जाएँगे। तुम दोनों भी उसी चट्टान पर जानेवाले हो। तुम्हारी भी वही हालत होगी, जिससे वे गुज़र रहे हैं। देवी वृकेश्वरी की कृपा से तुम अगर बचकर निकल आओगे और गुरु भल्लूक की सेवा में...''

उस रीछवाले की बात को काटते हुए जीवदत्त ने उसे फटकारते हुए कहा, ''तोते की तरह अपने गुरु के नाम को रटना बंद करो। हमें उस चट्टान पर पहुँचना है। है न? हम अवश्य वहाँ जाएँगे। तुम अपना रास्ता नापो।''

''इतनी हिम्मत ! खुद उस चट्टान पर चले जाओगे? रीछवालो ने आश्चर्य-भरे स्वर में कहा।

''अब बताना कि तुम हमें वहाँ कैसे पहुँचाना चाहते हो? खड्गवर्मा ने पूछा। ''मरने के लिए इतनी जल्दबाजी क्यों कर रहे हो? चलो हमारे साथ'' कहते हुए वे दोनों को सुरंग मार्ग से होते हुए थोड़ी दूर तक ले गये। वहाँ उन्होंने चतुष्टकोण के आकार की एक बड़े पत्थर की तख्ती देखी। उस तख्ती में कसकर बंधे हुए फौलाद के एक तार को रीछवालों ने अपना पूरा बल लगाकर खींचा। तख्ती वहाँ से सरकी। जीवदन्त ने अब स्पष्ट रूप से भेड़ियों की चट्टान पर भालों सहित खड़े समरबाहु और उसके अनुचर को देखा। तख्ती की सरकने की आवाज़ सुनते ही समरबाहु चिल्ला पड़ा और बोला, ''अरे चन्दू ! लगता है

लगते हो। भेड़ियों की चट्टान से अगर तुम दोनों एक हफ़्ते के अंदर बच निकले और इस सुरंग मार्ग तक पहुँच सके तो गुरु भल्लूक की सेवा में अपनी ज़िन्दगियाँ काट पाओगे।''

खड्ग जीवदत्त ने खुले दरवाज़े से बाहर देखा। वहाँ विशाल समतल स्थल पर दस-बारह फुट की ऊँचाई पर पत्थर की एक बड़ी चट्टान थी। उसपर दो आदमी बैठे हुए थे। उनके हाथों में बर्छियाँ थीं। नीचे खड़े होकर उन्हें खाने के लिए तैयार भेड़ियों को वे अपनी बर्छियों से डरा रहे थे। उनपर आने से उन्हें रोक रहे थे। कुछ भेड़िये चिल्लाते हुए चट्टान के चारों ओर घूमने लगे।

''पहनावे को देखने पर लगता है कि उनमें से एक समरबाहु है'', जीवदत्त ने कहा। ''हम

कि चट्टान की पेट से होते हुए भेड़िए ऊपर आ रहे हैं।''

चट्टान पर चढ़ते हुए खड्ग जीवदत्त ने उनसे कहा, ''हम भेड़िए नहीं हैं। तुम्हारी ही तरह मनुष्य हैं। डरो मत, समरबाहु! हम तुम्हारे मित्र हैं।'' खड्ग जीवदत्त को वहाँ देखकर समरबाहु आश्चर्य में डूब गया। वह कुछ कहने ही वाला था कि इतने में रीछवालों ने पत्थर की तख्ती को ऊपर उठाते हुए सुरंग को बंद करते हुए कहा, ''अच्छा तुम सब दोस्त हो? तो मिल-जुलकर भड़ियों का शिकार बनो।''

जीवदत्त ने समरबाहु की पीठ को थपथपाते हुए उसे धीरज देते हुए कहा, ''स्वर्णाचारी द्वारा हमें तुम्हारे बारे में सब मालूम हुआ। हम अवश्य ही भेड़ियों की इस चट्टान से बचकर निकलेंगे और अपने स्थान पर जा पाएँगे। मेरी बातों का विश्वास करो।''

इतने में भूखा एक भेड़िया छलांग मारकर ऊपर आने लगा। खड्गवर्मा ने तुरंत झुककर अपनी तलवार से उसके सिर पर वार किया। फिर उसका गला पकड़ लिया और उस मरे भेड़िये को चट्टान पर फेंक दिया।

जीवदत्त ने उसके साहस और नैपुण्य की प्रशंसा करते हुए कहा, ''खड्ग तुमने कमाल कर दिखाया।'' फिर उसने समरबाहु से पूछा,''रीछ के गिरोहवाले किस समय पर इन्हें खिलाते हैं। जानते हो क्या?''

''वे सूर्योदर और सूर्यास्त के समय जन्तु

का मास इन क्रूर मृगों को खिलाते हैं। इसके लिए वे सामने दिखायी पड़नेवाली दीवार से सटे हुए दरवाज़े को खोलते हैं।'' समरबाहु ने कहा।

थोड़ी देर बाद जब सूर्योदय होने को ही था कि भेड़िए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लग गये। सुरंग मार्ग की ओर के दरवाज़े के नीचे वे ढूँढ़ने लग गए ।

जीवदन्त ने खड्गवर्मा को वह दरवाज़ा दिखाते हुए कहा, ''इसका यह मतलब हुआ कि रीछ के गिरोहवाले दरवाजा खोलकर भेड़ियों को मांस खिलाने जा रहे हैं । अपने बाणों को तरकस से निकालो और उस दरवाजे को अपना निशाना लगाओ!''

जीवदत्त के कहे अनुसार ही खड्ग वर्मा ने बाण को अपने धनुष पर चढ़ाया और चट्टान पर आराम से बैठ गया। दो-तीन क्षणों में सुरंग मार्ग

के ऊपर का दरवाज़ा खुलने लगा। दो रीछवाले टोकरी भर का मांस ले आये और वह भेड़ियों को फेंकने ही जा रहे थे कि खड्गवर्मा का बाण उनमें से एक के माथे पर जा लगा और वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर गया। उसके साथ ही दूसरा और उसके हाथ में रखी हुई टोकरी भी सुरंग मार्ग में गिर गई।

फिर देखते-देखते बिल में खलबली मच गयी। उस समय गुरु भल्लूक वृकेश्वरी देवी के सम्मुख पद्मासन लगाकर ध्यान-मग्न था। इस खलबली से उसका ध्यान भंग हो गया। वह क्रोधित हो खड़ा हो गया और चिल्ला-चिल्लाकर पूछने लगा, ''यह सब क्या हो रहा है? यह कैसी खलबली? क्या कल पकड़े गये दोनों जवानों को भेड़िये खा रहे हैं?''

उस समय दौड़ा-दौड़ा वहाँ एक आदमी आया। वह भय से काँपता हुआ कहने लगा, ''गुरु भल्लूक, बड़ा अनर्थ हो गया। भेड़ियों की चट्टान पर बैठे एक ने हमारे आदमी को मार डाला।''

आँखें लाल करते हुए गुरु भल्लूक ने कहा, ''उसकी इतनी हिम्मत ! वह शायद जानता नहीं कि मैं वृकेश्वरी देवी का प्रिय भक्त हूँ और मेरे शक्ति-सामर्थ्य अपार हैं। अभी इसी क्षण उन दोनों को अपने शूल से मृत्युलोक भेज दूँगा।'' कहते हुए वह भेड़ियों की चट्टान की तरफ़ बढ़ा।

थोड़ी ही देर में वह सुरंग द्वार के पास पहुँचा और चट्टान पर खड़े उन दोनों को संबोधित करते हुए कहा, ''अरे ओ पाखंडियों, तुमने वृकेश्वरी देवी के एक भक्त को मारकर अक्षम्य अपराध किया है। अभी अपने शूल से तुम्हारा अंत कर दूँगा।'' उसके स्वर में कर्कशता भरी हुई थी।

जीवदन्त ने मंत्रदंड अपने हाथ में लिया और हँसते हुए कहा, ''अरे गुरु भल्लूक, तुम तो भल्लूक हो। तुम किसी भल्लूकेश्वरी देवी की पूजा क्यों कर रहे हो? सुनो, मैं चट्टान से उतर रहा हूँ और सुरंग मार्ग के दरवाज़े के पास पहुँच रहा हूँ।''

समरबाहु ने जीवदन्त को रोकते हुए कहा, ''ऐसा मत कीजिए। आप भूखे भेड़ियों के बीच में से होते हुए उस गुरु भल्लूक के पास जाना चाह रहे हैं। यह बड़े ही ख़तरे का काम है। भल्लूक मंत्र-तंत्रों में असमान दक्ष है। वह आसानी से आपका अंत कर सकता है।''

खड्गवर्मा ने अपनी तलवार उठाते हुए कहा, ''समरबाहु, तुम नहीं जानते कि इस खड्ग में और जीवदन्त के दण्ड में कितनी अद्‌भुत शक्ति है। तुम्हें गुरु भल्लूक से डरने की कोई ज़रूरत नहीं।''

सुरंग मार्ग पर खड़े गुरु भल्लूक को जीवदन्त ने ग़ौर से देखा और खड्गवर्मा से कहा, ''खड्ग, यहाँ से बाहर निकलने का, लगता है एक ही उपाय है। जिस प्रकार हमने पहले जंगल में यक्षपुर के राजा और वहाँ के शेरों का शिकार किया, इसके लिए हमने जिस तरीके को अपनाया, उसी तरीके को अमल में लाकर इन भेड़ियों का भी शिकार करें और गुरु भल्लूक के बिल में खलबली मचा दें।''

''तो फिर देरी क्यों?'' खड्ग ने उत्साह भरे स्वर में कहा।

जीवदन्त ने पहले खड्गवर्मा को समझाया कि आगे क्या किया जाए। फिर उसने धीमे स्वर में उससे कहा, ''पहले उस मरे भेड़ियों को अपने कंधे पर डालो! मरे हुए इस भेड़िये के मांस के लिए भूखे भेड़िये तुम्हारा पीछा करने लगेंगे। तब अपनी तलवार की धार का मज़ा उन्हें चखाना।''

''जीव, कब तक समझाते रहोगे? कब तक मैं इस मुर्दे भेड़िये को अपने कंधे पर ढोता रहूँगा?'' खड्गबर्मा ने कहा।

''तब हम अभी चट्टान से नीचे उतर रहे हैं। तुम चट्टान के चारों ओर दौड़ते रहो और ज़्यादा

से ज़्यादा भेड़ियों को अपनी ओर आकर्षित करो। मैं भी तुम्हारे ही पीछे-पीछे दौड़ता रहूँगा। फिर बाद...''

जीवदन्त की बात पूरी होने के पहले ही खड्गवर्मा ने कहा, ''अरे गुरु भल्लूक, हम तुम्हारे ही पास आ रहे हैं। तुम और तुम्हारी वृकेश्वरी अपनी प्राण-रक्षा करना चाहते हो, तो बिल दुर्ग से भाग जाओ!'', कहकर चिल्लाता हुआ वह चट्टान से कूद पड़ा। उसी के साथ-साथ जीवदन्त भी कूद पड़ा।

दो आदमियों को अपनी ही तरफ आते हुए देखकर भूखे भेड़िये उन दोनों की ओर दौड़े। खड्गवर्मा चट्टान के चारों ओर तेज़ी से दौड़ने लगा। भेड़िये भी उसका पीछा करते हुए चट्टान के चारों ओर दौड़ने लगे। पीछे जीवदन्त अपने मंत्रदंड के सहारे भेड़ियों को उठाकर नीचे गिरा

रहा था और खुद भी दौड़ रहा था।

भल्लूक सुरंग के द्वार पर खड़े होकर यह सब कुछ देख रहा था। उत्साह-भरित होकर वह चिल्लाने लगा, "सब बृकेश्वरी देवी की महिमा है। अपने शत्रुओं की मति भ्रष्ट कर दी उसने। उन्हें पागल बना दिया और उन्हें अपने वाहक भेड़ियों के मुँह का निवाला बना रही है।" कहते हुए भक्ति-आवेश में आकर उसने आँखें बंद कर लीं।

खड्ग जीवदन्त को लगा कि यह अच्छा मौका है। जीवदन्त ने तब कहा, "जीव, यही अच्छा मौका है। भल्लूक भक्ति के नशे में है।" खड्गवर्मा उसका इशारा ताड़ गया और उसने उस मरे भेड़िये को अपने बायें हाथ में उठाकर उस सुरंग द्वार में फेंक दिया, जहाँ भल्लूक खड़ा था। अपने आहार को वहाँ देखते ही चार-पाँच भेड़िये छलांग मारकर उस द्वार की ओर बढ़े।

आँखें बंद करके ध्यान में मग्न भल्लूक पर मरा भेड़िया क्या गिरा, उसका मांस खाने चार-पाँच भेड़िये भी उसपर टूट पड़े।

"रक्षा करो बृकेश्वरी देवी, रक्षा करो", कहता हुआ भल्लूक नीचे गिर गया। इतने में उसके शिष्य 'भेड़िये, भेड़िये' कहकर चिल्लाने लगे और मुड़कर दुम दबाकर भागने लगे।

गुरु भल्लूक भय से थरथरा उठा। उसने देखा कि कुछ भूखे भेड़िये मरे भेड़िये के मांस को खाये जा रहे हैं। एक भूखा भेड़िया अन्य भेड़ियों के बीच में जा नहीं पा रहा था, इसलिए वह गुर्राता हुआ भल्लूक को देख रहा था। उसकी दृष्टि उसी पर केंद्रित थी।

भल्लूक ने तुरंत अपना शूल उठाया और उस भेड़िये को अपना निशाना बनाते हुए कहने लगा,

''वृकेश्वरी के प्रिय भक्त को ही खा जाना चाहते हो।'' कहता हुआ वह पीछे-पीछे जाने लगा और सुरंग मार्ग में बेतहाशा भागने लगा। इधर खड्ग जीवदन्त को मालूम नहीं हो पाया कि भल्लूक पर क्या गुज़रा। वह मरा था या ज़िन्दा है?

''खड्ग, हमारे यहाँ खड़े रहने से कोई फ़ायदा नहीं होगा। हम नहीं जानते कि भल्लूक मरा या ज़िन्दा है। सुरंग में जिन भेड़ियों ने प्रवेश किया, उन सबने उन दुष्टों के दिलों में दहशत पैदा कर दी। तुम्हें वह शोरगुल सुनाई पड़ रहा है न?'', जीवदन्त ने कहा।

''क्यों नहीं? अच्छी तरह सुन रहा हूँ। अब तक वे कायर बिल छोड़कर जा चुके होंगे। गुरु भल्लूक को तो हमें ज़िन्दा छोड़ना नहीं चाहिए।'' खड्गवर्मा ने कहा।

''तो फिर विलंब क्यों? हम सब सुरंग मार्ग से होते हुए बिल में पहुँचे। समरबाहु और उसके अनुचर को यहीं बुला लो।'' जीवदन्त ने कहा।

खड्गवर्मा के बुलाते ही समरबाहु और उसका अनुचर भेड़ियों की चट्टान से उतरकर उनके पास आ गये। जीवदन्त ने उनसे कहा, ''समरबाहु, हम ऊपर के द्वार से होते हुए बिल में प्रवेश करने जा रहे हैं।''

समरबाहु ने चारों ओर एक बार अपनी नज़र फैलायी और डरते हुए कहा, ''क्या हम चारों मिलकर शत्रुओं को मार सकेंगे? अच्छा यही होगा कि हम यहीं से मुड़कर जंगल पहुँचें। अब हमें देखना है कि यहाँ से जंगल जाने का क्या कोई रास्ता है?''

''ड़रो मत समरबाहु, यह भेड़ियों की चट्टान है। यहाँ से बाहर जाना हो तो बिल ही एकमात्र मार्ग है, जहाँ से होते हुए हम बाहर जा सकेंगे।'' कहता हुआ जीवदन्त उठा और सुरंग मार्ग पर चढ़ गया। उसके पीछे-पीछे खड्गवर्मा भी वहाँ पहुँच गया।

समरबाहु और उसका अनुचर निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि क्या किया जाए। इतने में बचे भेड़िये अपनी जीभ बाहर निकालते हुए एक-एक करके उन्हें खा जाने नज़दीक आने लगे।

(क्रमशः)

भारत की गाथा

एक महान सभ्यता की झांकियाँ युग-युग में सत्य के लिए इसकी गौरवमयी खोज

१८. देवी प्रतीक्षा में

"दादाजी, पुरी जगन्नाथ मंदिर की अपनी कहानी है। क्या हमारे देश के अन्य मंदिरों के बारे में भी ऐसी ही कहानियाँ प्रचलित हैं?" संदीप ने पूछा।

"हाँ बेटे, हमारे देश के जितने भी मुख्य मंदिर है, उन सबके अपने-अपने स्थल पुराण हैं। किन्तु कन्याकुमारी जैसे मंदिरों से संबंधित कथाओं के पीछे अपार सत्य छिपे हुए हैं। इसी कारण ये बहुत ही मुख्य मंदिर माने जाते हैं" देवनाथ ने कहा।

"कन्याकुमारी ! वही, जो हमारे देश के दक्षिणी अग्र भाग में स्थित है? है न? हमारे अध्यापक भी बता रहे थे कि शीघ्र ही वे हमें वहाँ यात्रा पर ले जानेवाले हैं। क्या वहाँ मंदिर भी है?" संदीप ने आश्चर्य भरे स्वर में पूछा।

"मंदिर में कन्याकुमारी देवी हैं। उसी के नाम पर इस शहर का नाम भी पड़ा है" कहते हुए देवनाथ कन्याकुमारी की कहानी सुनाने लग गये।

हमारे देश के अग्र भाग में तीन सागरों का संगम होता है। वह बहुत ही सुंदर क्षेत्र है। वहीं कन्याकुमारी नामक स्थान भी है। बहुत पहले यह पांडव राजाओं की राजधानी थी। उस समय उस राज्य के सुंदर कोने में बाणासुर नामकएक राक्षस रहा करता था। वह अत्यंत बलशाली था। उसकी शक्ति अपार थी। इसी कारण उसपर कोई भी काबू नहीं पा सका। अहंकार से मदमस्त होकर वह अनेकों विनाशकारी कार्य करने पर तुल गया। दूसरों पर अत्याचार करते हुए वह अत्यंत आनंदित होता था। घरों और भवनों को तोड़ देता था। मंदिरों को गिरा देता था। जो भी उसे रोकते, वह उनका संहार कर देता था। साधु

विश्वावसु

और संतों ने उसे बहुत समझाया। उसे सन्मार्ग पर लाने का यथाशक्ति प्रयत्न किये, पर उनके वे सारे प्रयत्न विफल हुए। उसने उन्हें भी मार डाला।

दिन ब दिन उसके अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। उसकी हिंसा-प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती गयी। मुनियों से यह सहा नहीं गया। वे उसके अंत का उपाय सोचने लगे। उन सबने मिलकर जगन्माता से प्रार्थना की कि वह उन्हें उबारे और उस राक्षस का अंत कर दें। जगन्माता ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें आश्वासन दिया कि यथाशीघ्र ही उस अत्याचारी का अंत करूँगी। उस लोक-कंटक का सर्वनाश करूँगी। देवी का अभय पाकर वे निश्चिंत हो गये।

पांडय् राजा की एक सुंदर पुत्री हुई। शिशु के दिव्य मोहक रूप को देखकर कुछ मुनियों ने तभी भाँप लिया कि वही जगन्माता का अवतार है। शुक्लपक्ष के चाँद की तरह हर रोज वह नयी आभा व कांति लिये बढ़ती गयी और यौवन में पाँव रखा। विविध विद्याओं, घुड़सवारी खड्ग युद्ध में वह निपुण हुई। क्षत्रियोचित विद्याओं में उसकी बराबरी का कोई था ही नहीं। उसकी ख्याति चहुँ दिशाओं में व्याप्त होती गयी। वह बड़ों के प्रति आदर भाव रखती थी, साधारण जनता से उसे प्यार था और मित्रों के प्रति उसका स्नेह बना रहता था। उसके मनमोहक रूप को लेकर कवि कविताएँ रचने लगे, गायक गीत गाने लगे। जनता जिन्हें सुनते हुए थकती ही नहीं थी। वे उसको लेकर विचित्र बातें किया करते थे।

बाणासुर ने भी राजकुमारी की सुंदरता के बारे में सुन रखा था। उसने मन ही मन उससससे विवाह रचाने का दृढ़ निश्चय किया। उसने दूत द्वारा यह संदेश महाराज को भिजवाया। राक्षस की इच्छा को जानते ही महाराज भयभीत हो गये। वह पापी,

अत्याचारी वहाँ पहुँचे, इसके पहले ही किसी एक योग्य व्यक्ति से अपनी पुत्री का विवाह कर देने का उन्होने निश्चय किया।

राजकुमारी को भी यह विषय मालूम हुआ। उसे अब स्मरण हो आया कि "आखिर मैं हूँ कौन? मैं पराशक्ति का अवतार हूँ। मानवेतर शक्ति हूँ। शिव के अलावा किसी और से विवाह रचाने का प्रश्न ही नहीं उठता!" उसने अपने पिता से विवाह के लिए आवश्यक प्रबंध करने को कहा और कहा कि मुहूर्त के ठीक समय पर वर वहाँ उपस्थित होंगे।

राजा को तब तक मालूम हो चुका था कि उनकी पुत्री कोई साधारण युवती नहीं है, इसलिए उन्होने उसकी बातों का विश्वास किया। विवाह मुहूर्त निश्चित किया जाय। राजकुमारी आँखे मूंदकर शिव के ध्यान में मग्न हो गयी।

उधर कैलाश पर्वत पर आसीन परम शिव ने आँखे खोलीं। उनका हृदय पराशक्ति मय हो गया।

उनका हृदय अब उनके वश में नहीं रहा। वे श्वेत पर्वत से उतरकर, दक्षिणी क्षेत्र की ओर बढ़े।

"परमशिव अगर राजकुमारी से ब्याह रचाएँगे तो राजकुमारी का उनके साथ कैलाश चले जाना निश्चित है। तब उसके बाद दुष्ट राक्षस को कौन मारेगा? कौन उसका अंत कर सकेगा?" मुनिगण इस सत्य को लेकर चिंतित हो गये। यह समस्या उन्हें परेशान करने लगी। उन्होने नारद को अपनी चिंता का कारण बताया। नारद को भी मुनियों की इस चिंता का कारण सही लगा। तब नारद ने बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ एक उपाय सोचा। आधी रात को ही मुर्गी की तरह बांगने लगे। सोच में खोये हुए परमशिव मुर्गा की बांग को सुनते ही घबरा गये और अपने आप कहने लगे "अरे, प्रात:काल हो गया। मुहूर्त का समय तो निकल गया"। वे लंबी सांस भरकर निराश हो वहीं बैठ गये। यथावत् वे तपस्या में लीन हो गये।

उधर राजा विवाह के प्रबंधों में व्यस्त थे। शुभ मुहूर्त का समय निकट आ गया। जनता यह जानने को बड़ी ही आतुर थी कि वह वर कौन है, जो हमारी राजकुमारी से विवाह करने जा रहा है। उस समय वहाँ राक्षस बाणासुर आ धमका। वह गरज-गरजकर चिल्लाने लगा "तुम्हारा इतना साहस। राजकुमारी का विवाह किसी और से करने का प्रयत्न कर रहे हो? यह तो कदापि हो ही नहीं सकता। उसका विवाह होगा तो मुझी से होगा।" सैनिकों ने उसे रोकने की कोशिश की, पर उनको हटाते हुए विकट अट्टहास करते हुए आगे बढ़ने लगा और राजभवन में प्रवेश किया।

उधर राजकुमारी का वधु के रूप में अलंकार किया जा रहा था। अंत:पुर की स्त्रियाँ उसे पुष्पमालाओं और आभूषणों से सजा रही थीं। बाहर से सुनायी दे रहे हाहाकर को सुनकर राजकुमारी ने सिर उठाकर उस तरफ देखा। उसने देखा कि हाथ में नंगी तलवार लिये, लंबे-लंबे डग भरता हुआ, रोकनेवाले सैनिकों को पछाड़ता हुआ, वस्तुओं को तितर-बितर करता हुआ राक्षस बाणासुर चला आ रहा है।

राजकुमारी अपनी जगह से उठी और आगे बढी। उसके अपूर्व सौंदर्य को देखकर बाणरसुर जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रह गया। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि ऐसी सुंदरी पृथ्वी पर हो सकती है। तब उसे एक कटु ध्वनि सुनायी पड़ी "जा, यहाँ से, अभी इसी क्षण चला जा!" यह राजकुमारी की आज्ञा थी। "सुंदरी, क्या वापस जाने के लिए ही मैं इतनी दूर चला आया हूँ?" कहते हुए बाणासुर ने उसे पकड़ लिया। राजकुमारी ने अपने को उसके चंगुल से छुड़ाया और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे ढकेला। राक्षस औंधे गिरा। पल भर में ही

उठकर वह फिर से उसपर टूट पड़ा, तो इतने में राजकुमारी ने अंगरक्षक के म्यान से तलवार खींच ली और राक्षस से युद्ध करती रही। अंत में उसने बाणासुर का सर काट डाला।

पराशक्ति ने जिस कार्य के लिए भूलोक में अवतार लिया, वह अब पूरा हो गया। राक्षस की पीड़ा से मुक्त हो जाने पर सब संतुष्ट हुए। किन्तु जिस वर की उन्हें प्रतीक्षा थी, उसके न आने पर वे बहुत निराश हुए। अतिथियों के लिए जो पकवान बनवाये गये, वे सबके सब या तो रेत के कण बन गये या कंकड़। पराशक्ति का अवतार अब शिला बन गयी। तब से लेकर वह कन्याकुमारी के रूप में दर्शन दे रही है। उसके विश्वास का संकेत है पूर्व दिशा। वह उसी ओर देखती हुई तपस्या में लीन दीखती है।

सब बच्चों ने एक साथ कहा ''अद्‌भुत कहानी है''। ''इसे केवल कहानी मत समझो। इस कहानी का संदेश भी अद्‌भुत है'' देवनाथ ने कहा।

संदीप ने पूछा ''वह क्या संदेश है दादाजी?'' ''दक्षिण में खड़ी होकर देवी संपूर्ण देश की रक्षा कर रही हैं। राजकुमारी को जिस प्रकार राक्षस अपने अधीन नहीं कर सका, उसी प्रकार हमारे देश को कोई भी शत्रु अपने अधीन नहीं कर सकेगा। और यह हमारे विश्वास से संबंधित विषय है। इस कहानी में एक और सूक्ष्म भी निहित है।'' देवनाथ ने कहा।

''वह क्या है?'' श्यामला ने उत्कंठापूर्ण स्वर में पूछा। ''श्रीअरविंद ने महायोगी बनने के पहले याने जब वे स्वतंत्रता आंदोलन चला रहे थे, तब देश को एक महत्वपूर्ण संदेश दिया। उन्होने कहा ''भारत भूमि केवल एक भूभाग मात्र ही नही है बल्कि वह दिव्य धरती है। महाचैतन्य का भौतिक रूप ही भारत भूमि है। चैतन्य शिखर में परमेश्वर परमशिव हैं तो पादतल में पराशक्ति है। वह तपस्या में लीन है और परमेश्वर को भूमि पर लाने की उसकी तड़प है। दोनों एक हो जाएँ तो परिपूर्ण चैतन्य से शुभ परिणाम निकालेंगें। कन्याकुमारी की प्रतीक्षा हमें जताती है कि भविष्य में भारत आध्यात्मिक चैतन्यस्थल बनेगा। यह आशापूरित संदेश है और इस संदेश को हमें कभी भूलना नहीं चाहिये।'' देवनाथ ने यों समाप्त किया।

''धन्यवाद दादाजी। हममें विश्वास जगानेवाली गाथा आपने बतायी'' सब बच्चों ने एक होकर कहा।

(क्रमशः)
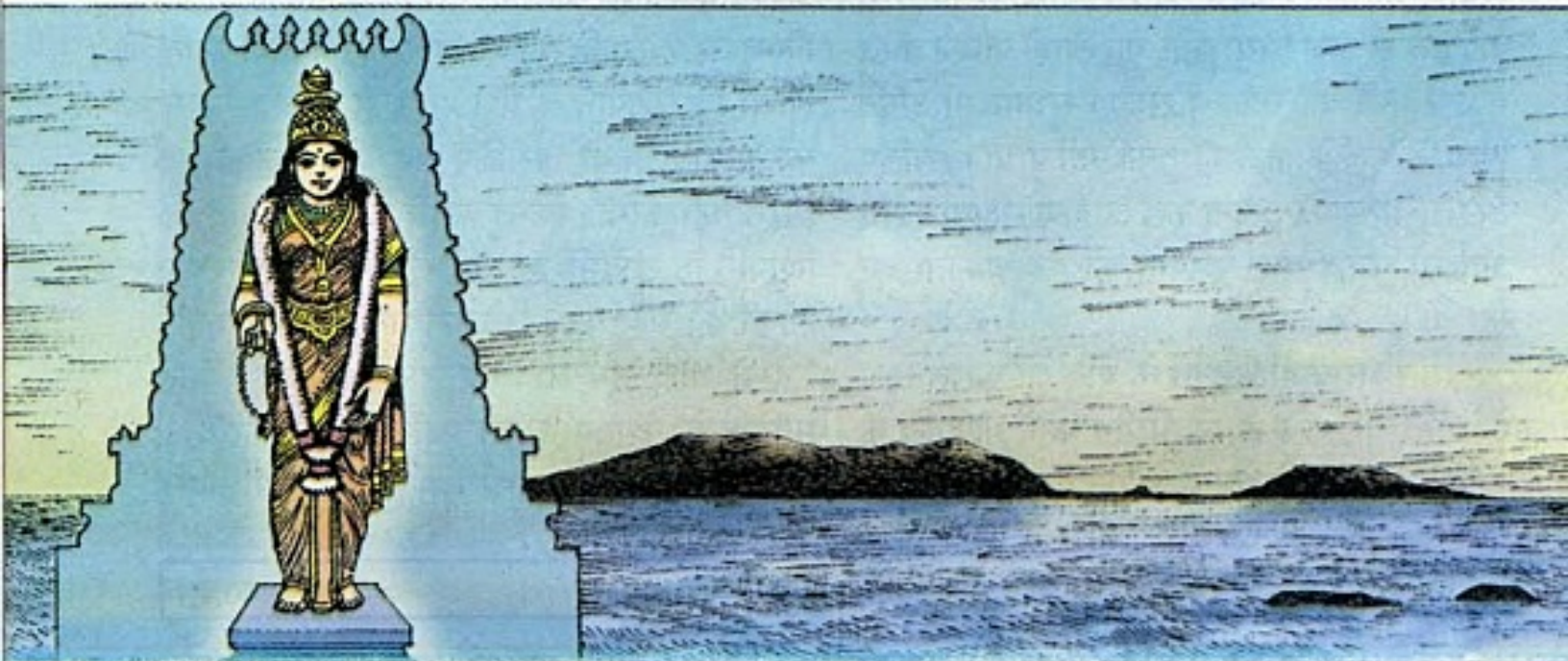
अचूक वाणी

सुधाम निरंजनपुर का निवासी था। वह साधारण किसान परिवार का था। उसकी दो एकड़ की उपजाऊ ज़मीन थी। स्वयं खेती करते हुए वह अपनी पत्नी व संतान के साथ आराम से जीवन काट रहा था।

उसी गाँव में पशुपति नामक एक धनाढ्य रहता था। ज़रूरतमंदों को वह ब्याज पर धन देता था और किसी न किसी बहाने की आड़ में उनकी संपत्ति को हड़प लेता था। सुधाम के पिता ने पशुपति से कर्ज लिया और वह अपने जीवन काल में उस कर्ज को चुका न सका। सुधाम भी अपने पिता के कर्ज के कर्ज को चुका नहीं पाया। इसलिए उसे लाचार होकर अपना कुछ आनाज सौंपना पड़ता और यों ब्याज मात्र पशुपति को वह चुकाता आ रहा था।

साल भर कड़ी मेहनत के बाद जो फ़सल हाथ में आती थी, उसे अपने अधीन करने पशुपति के लठैत आदमी खलिहान में आकर ऐन वक्त पर खड़े हो जाते थे। बेचारा सुधाम कर भी क्या सकता था। क्रोध और आक्रोश पी जाता और जितना अनाज उसे मिलता है, तोलकर दे देता। इसके अलावा कोई दूसरा चारा भी न था।

एक बार पशुपति के चरवाहे की भूल के कारण उसके चार-पाँच पशु सुधाम के खेत में घुस आये और उसकी फ़सल को बरबाद कर डाला, पड़ोसियों ने सुधाम को सलाह दी कि वह ग्रामाधिकारी से इसकी शिकायत करे और इसका मुआवजा पाये। किन्तु उसने उनकी सलाह नहीं सुनी। क्योंकि उसने सोचा कि पशुपति के पशुओं ने ही उसकी फ़सल को बरबाद किया, इसलिए वह इस साल ब्याज वसूल नहीं करेगा। किन्तु फ़सल की कटाई होते ही पशुपति के आदमी आ खड़े हो गये और धान को सौंपने की मांग करने लगे। सुधाम ने उनसे कहा, ''देखो भाई, तुम लोग तो जानते हो कि तुम्हारे मालिक के पशुओं ने मेरी फ़सल बरबाद कर दी। जो बची-खुची है, उससे मुझे अपना और अपने

- रमा जैन -

परिवार का पेट भरना है। तुम लोग अपने यजमान से इस साल के लिए मुझे माफ़ी देने की सिफारिश करो। अगले साल से यथावत् मैं धान तोलूँगा और सौंपूँगा''।

यह समाचार जानकर पशुपति स्वयं वहाँ आ गया। उसने हठ किया कि किसी भी हालत में धान तोलना ही होगा और उसके सुपुर्द करना ही पड़ेगा। सुधाम, उसकी पत्नी और उसके बच्चों ने बहुत मिन्नतें कीं, पर उसने उनकी एक न सुनी। उसके इस दुर्व्यवहार से सुधाम की सहनशक्ति मर गयी।

वह क्रोध भरे स्वर में बोला, ''मेरी इस दीन स्थिति के कारक कोई और नहीं, तुम्हारे पशु ही हैं। अगर वे फ़सल को बरबाद न करते तो धान तोलता और तुम्हारा ब्याज चुका देता। मेरी इस दुस्थिति के कारक तुम हो, फिर भी बड़ी ही निर्दयता के साथ पेश आ रहे हो। तुममें थोड़ी भी मानवता रह नहीं गयी। तुममें और पशु में कोई फरक़ ही नहीं रह गया''।

सुधाम की इन कटु बातों को सुनकर पशुपति क्षण भर के लिए निस्तेज रह गया। उसने कल्पना ही नहीं की थी कि सुधाम जैसा एक मामूली किसान यों विद्रोह करेगा और ऐसी कटु भाषा का उपयोग करेगा। उसकी आँखें क्रोध से लाल-लाल हो गयीं। वह आपे से बाहर हो गया और उसने अपने आदमियों को उसे पेड़ से बांध देने की आज्ञा दी। पेड़ से बांध देने के बाद पशुपति स्वयं उसे चाबुक से मारने लगा। उसे रोकने आयी उसकी पत्नी और उसके बच्चों को भी वह चाबुक से मारने लगा। वहाँ इकट्ठा आदमियों में से किसी ने भी पशुपति को ऐसा करने से मना करने का साहस नहीं किया। उनमें से कोई भी ऐसा नहीं था। जिसने पशुपति से कर्ज़ न लिया हो।

मारते-मारते थक जाने के बाद चाबुक को दूर फेंकते हुए पशुपति ने कहा, ''अरे सुधाम! तुम्हारा घर और खेत अपना बना लूँ, तब भी तुम्हारा कर्ज़ आधा ही चुकेगा। बाक़ी आधा कर्ज़ कैसे चुकाओगे यह मैं नहीं जानता। पर तुम्हें चुकाना ही पड़ेगा। इसके लिए कल सबेरे तक का मैं तुम्हें समय देता

हूँ।'' यों कहकर वह वहाँ से निकल ही रहा था कि अपनी शक्ति जुटाकर सुधाम चीख़ पड़ा ''अरे ठहर जा।''

पशुपति रुक गया। उसे 'अरे' कहने के उसके साहस पर वह स्तब्ध रह गया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

सुधाम ने दोनों हाथ जोड़ सिर उठाकर आकाश को एक बार देखा और कहा, ''कहा जाता है कि मनुष्य के विनाश के जब दिन आते हैं तब उसकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। तुम्हारे भी नाश के दिन निकट आ गये हैं। इसीलिए ऐसा दुर्व्यवहार कर रहे हो। अपने को सर्वाधिकारी समझ रहे हो। अपनी सीमाओं को लांघ रहे हो। मैं सचमुच ईमानदार हूँ, सत्यवादी हूँ, धर्मपरायण हूँ तो कल सबेरे तक तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा। इसके गवाह हैं वे सूर्य, जो इस मध्यान्ह के समय प्रकाशमान हैं।''

पशुपति उसका मज़ाक उड़ाता हुआ हंस पड़ा और तेज़ी से वहाँ से चला गया। उस दिन रात को अकस्मात् बहुत भारी वर्षा हुई। बिजली की कड़क से आकाश गूँज उठा। ऐसा लग रहा था, मानों आकाश टूटकर गिरने ही वाला है। पशुपति के घर पर बिजली गिरी। उसका महल धराशायी हो गया। वहाँ रहनेवाला कोई न बचा। सबके सब मर गये।

ठीक उसी समय पर महर्षि नारद भूलोक यात्रा समाप्त करके सत्य लोक जा रहे थे। सुधाम के खलिहान में उस दिन जो हुआ और रात को गाँव में जो बीता, उन्होंने स्वयं देखा। इन घटनाओं ने विशेष रूप से उनका ध्यान खींचा। यह देखकर उन्हें अपार आश्चर्य हुआ कि एक सामान्य मनुष्य की वाणी में इतनी महान शक्ति है।

सत्यलोक पहुँचते ही नारद ने ब्रह्मा से पूछा, ''पशुपति की मृत्यु संयोगवश हुई है अथवा सुधाम की वाक् शक्ति के कारण? एक सामान्य मानव की वाणी में इतनी शक्ति कैसे आ पायी? यह कैसे संभव हो पाया?''

ब्रह्मदेव ने मुस्कुराते हुए कहा, ''नारद, सुधाम कोई सामान्य मनुष्य नहीं है। बड़ा ही सत्यशील, धर्मपरायण, कर्तव्यनिष्ठ एवं निस्वार्थी है। इसी कारण उसकी वाणी में इतनी महान शक्ति भरी पड़ी है। जो हुआ, उसे तुम्हें सुगमता से जानना हो तो उधर देखो'' कहते हुए ब्रह्मा ने भूलोक का एक भाग नारद को दिखाया।

अरण्य मार्ग पर सुबोधक नामक एक सन्यासी बढ़ा चला जा रहा था। रास्ते के बगल ही की एक झाड़ी में कालद्रष्ट नामक एक नाग बहुत ही बुरी तरह से घायल होकर कराह रहा था। जैसे ही उसने सन्यासी सुबोधक को देखा, बड़ी मुश्किल से झाड़ी में से बाहर आता हुआ उसने पूछा, ''स्वामी, आपने मुझे पहचाना?''

सुबोधक ने नाग को देखा और उसे पहचानते हुए आश्चर्य भरे स्वर में कहा, ''अरे, आप कालद्रष्ट, क्या हो गया आपको? इतने घायल कैसे हो गये?''

''क्या बताऊँ स्वामी। इधर से गुज़रते हुए मानवों को बिना डँसे, केवल फुफकार कर उन्हें डरा रहा था। यों कुछ दिन बीत गये। अब मानव इस निर्णय पर आ गये कि मेरे दांत नहीं रहे और मुझमें विष नहीं रहा। अकारण ही मुझपर उन्होंने आक्रमण किया और घायल कर दिया। बड़ी मुश्किल से बचकर निकला। ऐसा मैंने किया, आप ही के कहे अनुसार। अब आप ही कहिये, मैं क्या करूँ?'', कालद्रष्ट ने प्रार्थना की।

सब कुछ सुनने के बाद सुबोधक ने लंबी सांस खींचते हुए कहा, ''कालद्रष्ट, तुम्हारे साथ जो हुआ और जिन अनुभवों से तुम गुज़रे, वैसा ही पहले भी बहुतों के साथ हुआ है वे भी ऐसे ही अनुभवों से गुज़रे हैं। अधिकाधिक मनुष्यों में हिंसा-प्रवृत्ति होती है। पर तुम जैसे धर्मनिष्ठ सुस्पष्ट रूप से इसका अनुमान लगा नहीं पाते। धर्मबद्ध होकर जीवन बितानेवाले हर जीव का जीवन अग्नि के समान है। मूर्खों को यह कठोर सत्य बातों से नहीं बल्कि कार्यों से बताना होगा कि अग्नि के स्पर्श से कोई भी जलता है। मेरे कथन में निहित अर्थ जान गये?'' कहते हुए सुबोधक ने उसके शरीर पर अपने हाथ फेरे और वहाँ से चलता बना।

इस घटना के घटने के पंद्रह मिनिटों के अंदर दो आदमी वहाँ आये। एक के हाथ में बड़ी लाठी है और दूसरे के हाथ में सांप को पकड़कर बंद कर देनेवाली टोकरी है।

जिसके हाथ में लाठी है, वह झाड़ी के अंदर झांकने लगा और कहने लगा, ''यहीं यह सांप है, जिसके विषैले दांत नहीं रहे। मैं उसे झाड़ी से भगाऊँगा और तुम निर्भय होकर उसे तुरंत पकड़कर टोकरी में बंद कर दो।'' कहते हुए उसने झाड़ी पर ज़ोर से लाठी दे मारी।

दूसरे ही क्षण कालद्रष्ट झाड़ी से बाहर आया और उसे डँस लिया। सरकता हुआ वह दूसरे की ओर झपटा। फिर दोनों चीखते-चिल्लाते वहाँ से बेतहाशा भागने लगे।

अब नारद की समझ में यह धर्मसूक्ष्मता आ गयी कि धर्म के अनुसार चलनेवाला हर जीव अग्नि के समान है। उन्होंने ब्रह्मा को अपनी कृतज्ञता जतायी।

भील का कुत्ता

जंगली पक्षियों व पानी पर रहनेवाले पक्षियों का शिकार करनेवाले एक भील को एक कुत्ते की ज़रूरत महसूस हुई। वह चाहता था कि वह कुत्ता पेड़ों के नीचे से और पानी में से, उसके शिकार किये गये पक्षियों को बाहर ले आने का काम करे। वह हाट में गया और एक जवान कुत्ते को खरीद ले आया।

घर लौटते हुए उसके दिमाग़ में विचार आया कि चलो, देख लें कि यह कुत्ता कितना सामर्थ्य रखता है। उसने सरोवर में तैरती हुई जंगली बतखों को अपने बॉण का निशाना बनाया। घायल एक बतख़ उड़ न सकने के कारण पानी में ही छटपटाने लगी। बाकी बतख़ें उड़ गयीं।

भील ने अपने कुत्ते को इशारे से बतख़ दिखायी और उसे उकसाया। वह पानी पर से चलता हुआ गया और बतख़ को अपने मुँह में दबोचकर ले आया। यह देखकर भील हक्का-बक्का रह गया कि उसका कुत्ता पानी के ऊपर चल रहा है। उसे लगा कि यह आश्चर्य-भरी बात किसी से बतायी जाए तो वे विश्वास तो करेंगे नहीं उल्टे उसे पागल समझेंगे।

उसने एक उपाय सोचा। दूसरे दिन दो भीलों को लेकर वह सरोवर के पास आया। जब उसने देखा कि पिछले दिन की ही तरह बतख़ों का एक झुंड सरोवर में है तो उसने उनपर अपना बाण चलाया। घायल बतख़ वहीं पड़ी रही और बाकी पक्षी उड़ गये। भील के उकसाने पर कुत्ता पानी पर चलता हुआ गया और घायल बतख़ का गला पकड़कर बाहर ले आया।

भील के दोस्तों ने यह देखकर कहा, "अरे, हाट में तुम्हें किसी ने धोखा दिया है। कैसा कुत्ता खरीद ले आये? इसे तो तैरना ही नहीं आता।" *- शैलेश.*

कृष्णभूपति

बहुत समय पहले मंदाकिनी नदी के तट पर मलयद्वीप नामक एक देश हुआ करता था।

गोपाल भूपति उस देश का शासक था, और कृष्णभूपति उसका एक मात्र दत्तक पुत्र। जब वह दस साल की उम्र का था तो उसके पिता की मृत्यु हो गयी।

राज्य का वह एकमात्र उत्तराधिकारी था परन्तु ईश्वर के बिधान के समक्ष किसकी चलती है। एक दिन घुड़सवारी करते हुए घोड़े से गिर जाने के कारण कृष्ण के सिर में गहरी चोट लगी। वैद्यों के लाख प्रयास के बाद भी कृष्ण की मृत्यु हो गई।

अब रानी सुनन्दा देवी व्याकुल हो उठीं। परंतु राजमाता का धर्म निभाते हुए उन्होंने अपने एक सिपाही के पुत्र को गोद लिया और उसका भी नाम कृष्णभूपति ही रखा गया। उम्र में वह छोटा होने के कारण राजनीति के दाव-पेंचों से बिल्कुल ही अनभिज्ञ था।

शासन सुव्यवस्थित रूप से चलाने का सामर्थ्य उसमें नहीं था। उसकी माँ रानी सुनंदा देवी को इस समस्या का सामना करना पड़ा। ऐसी गम्भीर स्थिति में चंदनवर्मा ने उसका साथ दिया, जिससे रानी इस चिंता से मुक्त हुई।

चंदनवर्मा सुनंदा देवी का सगा बड़ा भाई था। वह कुश द्वीप का राजा था। बहनोई की मौत की ख़बर पाते ही वह फ़ौरन मलयद्वीप पहुँच गया। बहन को सांत्वना देकर वह चुप नहीं रह गया। ऐसी दुर्स्थिति में उसे छोड़कर भला वह कैसे जा
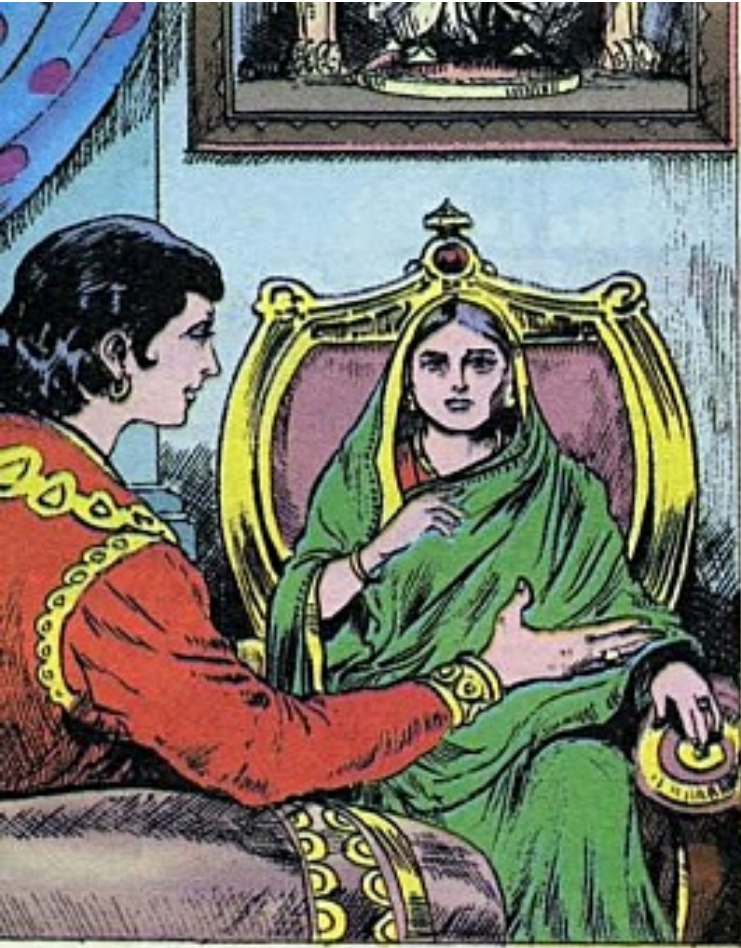
सकता था? उसे अच्छी तरह से ज्ञात था कि उसके चले जाने पर मलयद्वीप पर क्या गुज़रेगी! अतः उसने अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया। वह कुश द्वीप लौटा और राजपरिवार के एक विश्वास पात्र व्यक्ति मूल्यवंत को राज्य-भार सौंपा। फिर पत्नी और पुत्री समेत वह मलयद्वीप लौट गया।

एक शुभ महूर्त पर चंदनवर्मा ने अपने भान्जे कृष्णभूपति का राज्याभिषेक करवाया और उसी के नाम पर स्वयं राज्य की जिम्मेदारी संभालने लगा। वह खुद उसका गुरु बना और राजनीति से संबंधित सभी विषय उसे सिखाये।

युद्धकला कोविदों से उसे अस्त्र-शस्त्र विद्याएँ सिखलायीं। कृष्ण भूपति स्वयं मेधावी था, इसलिए चार-पाँच सालों में सभी विद्याओं में वह पारंगत भी हुआ। ललित कलाओं के प्रति भी उसकी तीव्र अभिरुचि थी। वह स्वयं कविताएँ भी रचता था।

चंदनवर्मा को जब पक्का विश्वास हो गया कि उसका भान्जा शासन-भार को स्वयं संभाल सकता है तो उसने सब कुछ उसके सुपुर्द कर दिया और स्वदेश जाने निकल पड़ा।

स्वदेश पहुँचने के बाद उसने वहाँ अप्रत्याशित घटनाओं का सामना किया। उसकी अनुपस्थिति में मूल्यवंत सुख-भोग में रत रहा। राज्य की व्यवस्था छिन्न-भिन्न कर दी। उसमें राज्य-लालसा इतनी बढ़ गयी कि जैसे ही चंदनवर्मा वहाँ पहुँचा, उसे क़ैद कर लिया। एक विश्वासघाती की इस करतूत को वह सह नहीं सका और चंदनवर्मा वहीं का वहीं मर गया। एक विश्वासपात्र नौकर की सहायता से उसकी पत्नी अपनी पुत्री के साथ किसी तरह मलयपर्वत पहुँच पायी।

अपने अग्रज के परिवार की दयनीय स्थिति को देखकर सुनंदा देवी बहुत दुःखी हुई। वह यह नहीं भूली कि उसी की सहायता से उसका पुत्र कृष्ण भूपति इतना योग्य शासक बन पाया है। अगर उस संकटमय स्थिति में वह सहायता नहीं पहुँचाता तो उस पर और उसके राज्य पर क्या बीतता। उसने अपने बड़े भाई की पत्नी और उसकी पुत्री का सादर स्वागत किया और उनकी रक्षा का कार्य अपने ऊपर लिया।

पटरानी सुनंदादेवी ने एक दिन अपने बेटे को अपने अंतःपुर में बुलाकर उससे कहा, "कृष्ण, मैंने आज तक अपने लिए किसी से भी कुछ नहीं

माँगा। सच कहा जाए तो मेरी अपनी कोई इच्छा भी नहीं हैं। परंतु आज मैं तुमसे दो वर माँगना चाहती हूँ, मांगूँ?''

कृष्णभूपति ने मुस्कुराते हुए कहा, ''आपकी माँग को पूरा करना मेरा कर्तव्य है। भला कोई पुत्र अपनी माँ की माँग को अस्वीकार करेगा? अगर आपमें संदेह होता कि मैं आपकी माँग स्वीकार करूँगा या नहीं, तो आप मुझे बुलाती ही नहीं। निःसंकोच मांगिये !''

''कृष्ण, मेरे माँगने के पहले ही तुम मुस्कुरा पड़े। इसका यह अर्थ हुआ कि पहले से ही इस बात का पता है कि मैं क्या माँगने जा रहीं हूँ!'' सुनंदादेवी ने पूछा।

''यह बात सच है कि मैं भांप गया कि वे दोनों माँगें क्या हो सकती हैं'' कृष्णभूपति ने कहा और कहा, ''अब कहिये !''

''तो सुनो। मेरी पहली माँग है, तुम्हें उस मूल्यवंत को मार डालना है, जिसने तुम्हारे मामा के साथ विश्वासघात किया, जिसकी कृतघ्नता के फलस्वरूप उनका अंत हो गया। जितनी जल्दी हो सके, तुम्हें उसे मौत के घाट उतारना है। इस प्रयत्न में तुम्हें वीर-गति भी मिल जाए, तो मुझे आनंद ही होगा।

अब रही मेरी दूसरी माँग! मैं चाहती हूँ कि मेरी भानजी ज्योत्स्ना देवी तुम्हारी पत्नी बने! तुम्हारे मामाजी की बड़ी चाह थी कि उनकी दत्तक पुत्री तुम्हारी धर्मपत्नी बने!'' कहती हुई उसने आँसू पोंछ लिये।

कृष्णभूपति ने बड़े ही मृदु स्वर में कहा, ''माँ, इतनी सी बात के लिए इतनी दुःखी क्यों होती

हैं? आपकी इच्छा के अनुसार ही ज्योत्स्ना इस राज्य की रानी बनेगी। अब रही मूल्यवंत को मौत के घाट उतारने की बात। यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है। इस बाबत मैंने महामंत्री और सेनाधिपति से भी बात कर ली।

कुशद्वीप ही नहीं बल्कि हमारे और उस द्वीप के बीच आमर व कल्वार द्वीप जो हैं, उन्हें भी हम अपने अधीन कर लेंगे। उन क़िलों पर भी हम अपना झंडा फहरायेंगे। सुनने में आ रहा है कि उन तीनों द्वीपों के राजा मस्त होकर आनंद लूटने में लगे हैं और जनता की भलाई की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दे रहे हैं। वहाँ की जनता भी उन स्वार्थी राजाओं के विरोध में है। शायद इस बहुलपंचमी के दिन ही हम आक्रमण कर देंगे।''

एक घंटा भी बीता नहीं होगा कि इतने में कृष्णभूपति को बाहर से आता हुआ शोरगुल सुनायी पड़ा। तुरंत वह बैठ गया और पहरेदार से पूछा कि "यह कैसा शोरगुल हो रहा है?"

बाहर खड़े दो पहरेदार तेज़ी से अंदर आये और कहा, "कोई बालक आया हुआ है प्रभु। उसकी अभी मूंछ भी नहीं निकली है, सेना में भर्ती होने की जिद कर रहा है। हमारे सेनाधिपति का संदेह है कि वह शायद शत्रुओं का गुप्तचर है, इसलिए आगे बढ़ने से उसे उन्होंने रोक रखा है."

कृष्णभूपति ने डेरे से बाहर निकलकर देखा। सैनिकों के सामने खड़ा लड़का सचमुच ही कम उम्र का है। सैनिकों की मशालों की कांति में उसने देखा कि उसके मुख पर कांति बिखरी है और एक विशिष्ट आकर्षण है। सैनिकों ने शायद उसे परेशान कर दिया होगा, इसीलिए उसके विशाल नेत्र सरोवर की छोटी-छोटी मछलियों की तरह इधर-उधर घूम-फिर रहे हैं और उसकी आतुरता दर्शा रहे हैं।

निर्भय होकर उसे ही देखते हुए उस युवक के चेहरे पर उसका हठ, दृढ़ता, धैर्य स्पष्ट गोचर हो रहे हैं। भूपति ने उसे एक बार नख से शिख तक देखा और उसे अंदर भेजने की आज्ञा दी।

एक ही मिनिट में अंदर आये उस युवक ने झुककर भूपति को नमस्कार किया और कहा, "सोचा नहीं था कि इतनी जल्दी आपके दर्शन होंगे। कृतज्ञ हूँ आपका प्रभु !"

सुकुमारता से भरे उसके कंठ माधुर्य पर ध्यान देते हुए भूपति ने पूछा, "तुम हो कौन? किस

बेटे की बातों से राजमहिषी बड़ी ही खुश हुई और उसने आशीर्वाद देते हुए कहा, "विजयीभव, तुम विजयी होकर लौटो पुत्र !"

कृष्णभूपति के कहे अनुसार ही बहुलपंचमी के दिन सूर्योदय के पहले ही मलयद्वीप की असंख्य सेना विजय यात्रा पर निकल पड़ी। सुप्रशिक्षित सैनिकों के आक्रमण के सम्मुख आमर व कल्वार द्वीपों की सेना टिक न सकी और वह बुरी तरह से हार गयी। उन द्वीपों के राजाओं ने अपनी हार मान ली और वे कृष्णभूपति की शरण में आ गये। विजयोत्साह से भरपूर सेना अब कुश द्वीप की ओर बढ़ी।

पूरा दिन वे सफ़र करती रही और रात होते-होते एक छोटे-से जंगल में पहुँची। राजा की आज्ञा के अनुसार जंगल के आंचल में सेना रुक गयी और वहीं डेरे डाले। थका भूपति डेरे के अंदर की शैय्या पर लेट गया।

देश के हो? हमारी सेना में भर्ती होने की इच्छा तुममें क्यों जगी?''

''प्रभु, मेरा नाम कलापूर्ण है। किसी भी देश का क्यों न होऊँ, पर अब मैं अनाथ हूँ। मेरा अपना कोई नहीं रहा। आप अधर्म के विरुद्ध बिजय-यात्रा पर निकले हैं। मैं भी उसमें भाग लेकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहता हूँ। मुझे भी रामायण का वह गिलहरी समझिये, जिसने सेतु-बंधन में राम की सहायता करनी चाही।'' सविनिय उसने कहा।

''तो तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारी बातों का बिश्वास कर लूँ और सेना में भर्ती कर लूँ? क्या मैं जान सकता हूँ कि युद्ध-विद्याओं में तुम्हारी पटुता, दक्षता कहाँ तक है?''

कलापूर्ण ने निर्भीकता से कहा, ''अवश्य जानियेगा। आपके सैनिकों में से कोई आ जाए तो अपनी दक्षता प्रत्यक्ष दिखाऊँगा।''

भूपति के ताली बजाने मात्र से एक सैनिक तेज़ी से अंदर आया। कलापूर्ण के कहे अनुसार वह सैनिक डेरे के अंदर के अंतिम माप पर गया। वहाँ पर्दे की तरह लटक रहे कपड़े से सटकर खड़ा हो गया।

कलापूर्ण ने अपने कपड़ों में से काठ की एक छोटी-सी डिबिया निकाली। उसमें से उसने पतली सुइयाँ निकाली। उन्हें एक-एक करके सैनिक के सिर की ओर फेंकने लगा।

पचीस सुइयाँ फेंकते ही सैनिक के सिर के चारों ओर के कपड़े पर सुइयों का एक वलय दिखायी देने लगा। कलापूर्ण के कहने पर भय से कांपता हुआ वह सैनिक उस जगह से हट गया और बाहर आ गया। बड़े ही चातुर्य व तेज़ी के साथ फेंकी गयी उन सुइयों को भूपति ध्यान से देख रहा था। उसे बिश्वास ही नहीं हो रहा था कि सैनिक को चोट पहुँचाये बिना ऐसा भी किया जा सकता है। इतनी एकाग्रता उसने बिरले ही देखी। सैनिक के बाहर आ जाते ही भूपति ने वहाँ का दृश्य देखा। पचीसों सुइयाँ एक दूसरे से समान रूप से दूरी पर थीं और अर्धवलय आकार में पर्दे में चुभ गयीं।

कृष्णभूपति ने अनायास ही तालियाँ बजाते

हुए कहा, ''अद्भुत कलापूर्ण, अद्भुत! तुमने कमाल कर दिखाया।''

कलापूर्ण ने सविनय कहा, ''प्रभु, ये सब मामूली सुइयाँ हैं। बहुत ही ख़तरनाक विषैली सुइयाँ भी मेरे पास हैं।''

बिना कुछ बोले भूपति ने कलापूर्ण का हाथ पकड़ लिया और उसे अपने बग़ल में बिठाना चाहा। ''नहीं प्रभु, मैं यहाँ बैठ जाऊँगा'' कहते हुए उसने अपना हाथ खींच लिया।

''तो युद्ध में भाग लेने का तुम्हारा निश्चय अटल है?'' भूपति ने पूछा। ''इसमें शक के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं प्रभु। विजय या वीरस्वर्ग, यही मेरा लक्ष्य है।'' कलापूर्ण ने बिना हिचकिचाये दृढ़ स्वर में कह दिया।

कृष्णभूपति ने आगे कुछ नहीं कहा। अपने ही डेरे के पास उसके लिए भी एक डेरा खड़ा करवाया। सबेरे सेनाधिपति से कहा कि कलापूर्ण आश्वारूढ़ होकर युद्ध भूमि में उसी के साथ-साथ रहे।

थोड़े और दिनों में युद्ध समाप्त हो गया। कृतघ्न और विश्वाघाती मूल्यवंत को कृष्ण भूपति ने युद्ध-भूमि में ही मार ड़ाला और कुशद्वीप के किले पर अपनी विजय पताका फहरायी। उसने बहादुर सेना को इस जीत पर बधाई दी और साक्षात अभिमन्यु की तरह युद्ध-भूमि में शत्रु-सेना के छक्के छुड़ाने के लिए में कलापूर्ण की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

विजय के बाद एक सप्ताह तक कुश द्वीप में ही विजयोत्सव होते रहे। एक दिन रात को भूपति ने कलापूर्ण को बुलाकर कहा, ''कलापूर्ण, तुम्हारी आशा और आकांक्षा पूरी हो गयीं। अब ही सही, अपना पूरा वृत्तांत बताना।''

कलापूर्ण ने तुरंत इसका कोई जवाब नहीं दिया'' सिर झुकाकर थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद उसने कहा, ''प्रभु, मेरी एक और छोटी-सी इच्छा है। आप कृपा करेंगे तो...'' कहते-कहते वह रुक गया।

''झिझक कैसी? कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है?'' भूपति ने पूछा।

''प्रभु, मैं अनाथ हूँ। पेट भरने के लिए कहीं न कहीं श्रम करना ही पड़ेगा। अपने साथ मुझे भी मलयद्वीप ले जाएँगे तो आजन्म आपकी सेवा में लगा रहूँगा'' कलापूर्ण ने यों अपनी इच्छा प्रकट की।

कृष्णभूपति हँस पड़ा और कहा, ''इसमें क्या

बड़ी बात है? पर तुम्हें पहले वह गीत सुनाना पड़ेगा, जिसे उद्यानवन में मौलसिरी वृक्ष के नीचे बैठकर आलाप कर रहे थे।''

कलापूर्ण, भूपति की इन बातों से चौंक पड़ा और तुतलाते हुए बोला ''प्रभु, आप वहाँ कब आये?''

राजा ने हंसते हुए कहा, ''आकाश में चाँदनी जब खिली हुई थी तब उस पूर्णचंद्र को निहारते हुए कहा गया, ''ऐ चाँदनी, कृष्णपक्ष के काले-काले मेघों के फैलाये हुए अंधकार के कारण ही, इन धवल कांतियों को इतनी बड़ी ख्याति व यश प्राप्त हुए हैं। जगत में अगर बुराई न होती तो अच्छाई का इतना मूल्य न होता। अतः ऐ चांदनी, यह मानकर आनंदभरित न होना कि यह तेरा सारा बड़प्पन तेरा अपना है। संपूर्ण श्रेय तो उस कृष्ण वर्ण का ही है।'' यों जब तुम मधुरगान में मग्न थे तब बग़ल के ही आम वृक्ष के पीछे छिपकर मैं सुन रहा था।''

कलापूर्ण मौन ही रहा। सिर झुकाकर प्रतिमा की तरह खड़ा रह गया। कृष्ण भूपति ने कलापूर्ण के समीप आते हुए कहा, ''कलापूर्णा, तुम्हारे मुखारविंद की निर्मलता, तुम्हारी उंगलियों की सुकुमारता पहले से ही मेरे संदेह के कारण बने हुए थे। अब ही सही, अपने बारे में विवरण बताओ और मेरे संदेहों को दूर करो !''

कलापूर्ण ने तुरंत उत्तर नहीं दिया। सिर झुकाकर ही उसने सिर के चारों ओर ढके हुए वस्त्र को उतारा। दूसरे ही क्षण काले-काले लंबे कोमल केश उसके कंधों पर फिसलने लगे। वह तुरंत कृष्णभूपति के सामने घुटने टेककर बोली, ''अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मैंने झूठ कहा था, सच्चाई छिपाई थी। मुझे क्षमा कीजिए। मैं कलापूर्ण नहीं, कला कौमुदी हूँ।''

भूपति ने दोनों हाथों से उसे पकड़कर उठाते हुए कहा, ''उसी दिन मैंने सोचा कि अवश्य ही तुम कोई क्षत्रिय कन्या हो। बैठो और बताओ कि तुमने यह अवतार क्यों कर धारण किया?'' फिर उसे एक आसन पर बिठाया।

राजा का आदर-सत्कार पाकर कलाकौमुदी की आँखों में आनंदाश्रु उमड़ आये। क्षण भर के लिए वह कुछ न बोल न पायी। फिर अपने आवेश को संभालकर उसने यों कहा :- **(क्रमशः)**
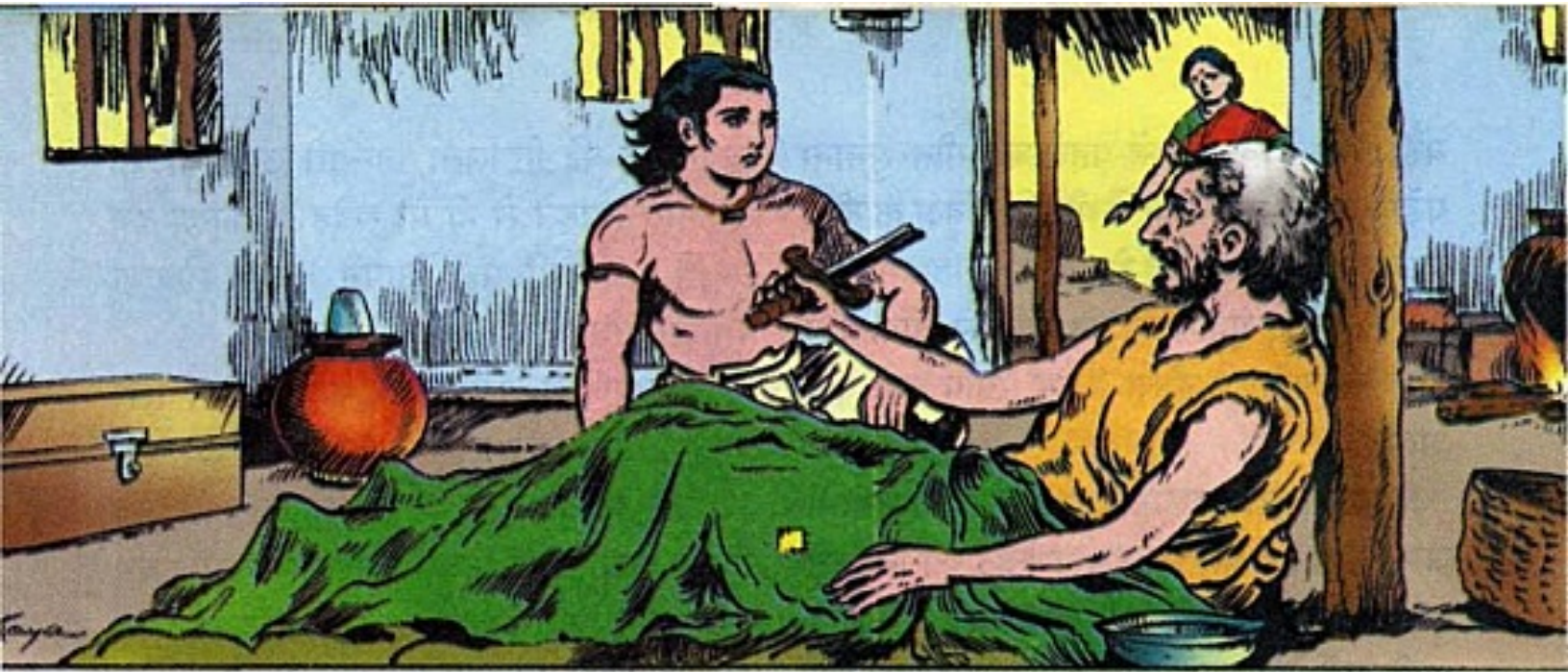
तलवार का धनी

बहुत समय पहले कोसल राज्य में बद्रीनाथ नामक एक ग़रीब रहा करता था। वह पास ही के जंगल में जाया करता और औषधियों के लिए आवश्यक फलों, जड़ी-बूटियों को इकट्ठा करके लाता था। उन्हें बेचकर ही अपना परिवार चलाता था।

मुरारी उसका एकमात्र बेटा था। बद्रीनाथ की बड़ी इच्छा थी कि उसे खूब पढ़ाएं। किंतु, गाँव की पाठशाला के अध्यापक ने उसे पढ़ाने से इनकार कर दिया। क्योंकि वह समझता था कि मज़दूरों के लड़कों में पढ़ाई के प्रति कोई श्रद्धा नहीं होती, वे पढ़ने लायक नहीं होते।

बद्रीनाथ अध्यापक के इस रूख से बहुत ही निराश हुआ। उसकी सारी आशाएँ ढह गयीं। समय यों गुजरता गया। अब मुरारी बीस साल का हो गया और बद्रीनाथ ने बुढ़ापे में क़दम रखा। उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होती गयी। अब परिवार को संभालने का भार मुरारी पर आ पड़ा। अपने पिता की तरह वह जंगल जाता और जड़ी-बूटियों को इकट्ठा करके ले आता। उन्हें बेचकर अपना गुजारा करने लगा।

बद्रीनाथ बीमार पड़ गया और वह मरण शैय्या पर लेट गया। उसने मरने के पहले अपने बेटे से कहा, ''बेटे...! मैंने लंबे अरसे से एक रहस्य को सबसे छिपा रखा। अब वह रहस्य तुम्हें बताकर दम तोड़ना चाहता हूँ।'' जंगल में तपस्या में लीन एक मुनि की मैंने सेवा-सुश्रुषा की।

यहाँ तपस्या पूरी करने के बाद जब वे हिमालय प्राँतों में जाने निकले, तब उन्होंने मुझे एक तलवार दी, जिसकी मूठ नहीं थी।

जब मैं उनकी विचित्र भेंट पर चकित हो रहा था तब उन्होंने हँसते हुए कहा, ''मेरी बात ध्यान से सुनो! जब तपस्या करने के लिए मैंने इस जंगल में प्रवेश किया, तब मैं एक साधारण मनुष्य था।

- अमृता सबनीस -

विष सर्पों और क्रूर मृगों से अपने को बचाने के लिए यह तलवार अपने साथ ले आया था। एक दिन एक राक्षस अचानक मुझपर टूट पड़ा। मैंने इस तलवार से उसका वध करना चाहा, किन्तु वह बच गया।

अपने को बचाने के प्रयत्न में वह पेट के बल पर ज़मीन पर गिर पड़ा। मैंने उसके दायें पैर पर ज़ोर से तलवार चलायी। तलवार दो भागों में टूट गयी। राक्षस चिल्लाता हुआ जंगल में भाग गया। मूठ के बिना यह जो तलवार है, इसके पीछे इतना इतिहास है। जन्म कुंडली के अनुसार यह तलवार तुम्हारे काम नहीं आयेगी, परंतु तुम्हारी संतान के लिए यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी। इससे वे संपत्तिवान बन पायेंगे।'' यों कहकर उन्होंने बिन मूठ की तलवार मुझे दी और मर गये।

पिता की दी हुई तलवार के लिए मुरारी ने एक म्यान बनवाया और कमर में बाँधकर घूमने-फिरने लगा। लोग जानते थे कि वह बिन मूठ की तलवार लिये घूम-फिर रहा है। इसलिए लोग उसे बिन मूठ की तलवार के धीर कहकर पुकारने लगे। यों एक साल बीत गया। वह भी अपने पिता ही की तरह जंगल जाता और जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करके ले आकर बेचता और जीविका चलाता था।

उसने एक दिन अपनी माँ से कहा, ''माँ, पिताजी कहते थे कि बिन मूठ की यह तलवार बड़ी ही महिमावान है। लेकिन आज तक इससे मुझे कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा। लगता है, यह गाँव मुझे रास नहीं आया। मैं कहीं जाकर व्यापार करके कमाऊँगा। कुछ साल तक तुम अपने भाई के घर में रहना।''
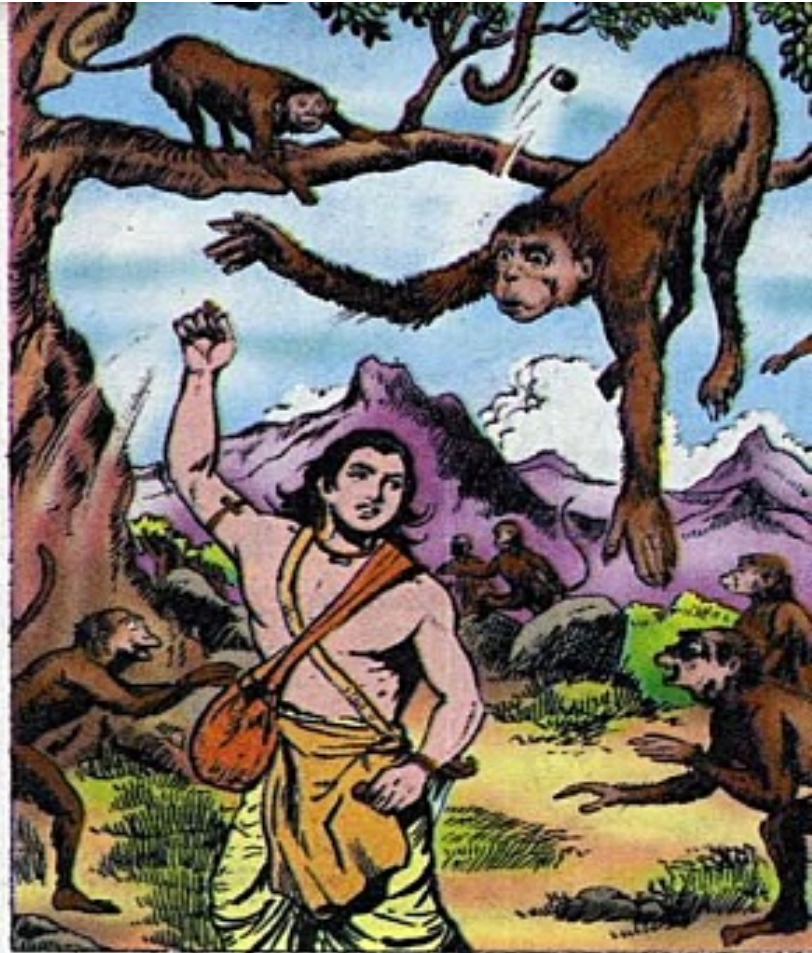
माँ ने उसकी बात मान ली। उसने माँ को उसके भाई के घर छोड़ दिया और जंगल में चला गया।

जंगल से जब वह गुज़र रहा था तब कुछ बंदरों ने ताड़ लिया कि उसके कंधे में जो थैली लटक रही है, उसमें रोटियाँ हैं। उन्होंने उसे घेर लिया। तब उसने वहाँ पड़े पत्थरों को उठाया और बंदरों पर फेंकने लगा। वे डरकर वहाँ से भाग निकले।

उसे लगा कि आगे भी ऐसी ही आपदाओं का सामना उसे करना पड़ेगा, तो उसने कुछ पत्थर अपनी थैली में डाल लिये। दोपहर को वह एक सरोवर के पास रुक गया और वहाँ बैठकर रोटियाँ खाने लगा।

उस समय पेड़ के पीछे से एक विकट अट्टहास सुनायी पड़ा। उसने आश्चर्य भरे नेत्रों से देखा कि एक राक्षस उसी की तरफ़ बढ़ा चला

आ रहा है। उसे देखते ही मुरारी डर के मारे काँपने लगा। उसने देखा कि वह राक्षस एक बैसाखी के सहारे चल रहा है और अपना दाँया पाँव घसीटता हुआ चला आ रहा है। ये समझने में उसे देर नहीं लगी कि यही वह है। अब मुरारी थोड़ा-बहुत निश्चिंत हो गया।

जैसे ही राक्षस मुरारी के पास पहुँचा, कहने लगा, ''आश्चर्य है, महाराक्षस मैं भी भूखा हूँ और तुम अधम मानव भी भूखे हो। रोटी खाकर तुम अपनी भूख मिटा रहे हो और तुम्हें खाकर मैं अपनी भूख मिटाऊँगा। अच्छे मौके पर मिल गये।''

मुरारी ने बिना डरे उससे कहा, ''मैं तुम्हें ही ढूँढ़ता हुआ यहाँ चला आया। अच्छा हुआ, तुम्हीं मेरे सामने आ गये। इस बार तुम मुझसे बच नहीं सकते। गुरु की आज्ञा का पालन पल भर में कर दूँगा।'' कहते हुए उसने म्यान से बिन मूठ की तलवार निकाली।

बिन मूठ की तलवार को देखते ही घायल हाथी की तरह वह ज़ोर से चिंघाड़ने लगा और दीन स्वर में कहने लगा, ''उस गुरु महाराज से कहना कि वे मुझे माफ़ कर दें। ऐसी गलती फिर कभी नहीं दुहराऊँगा। तुमने तो बताया नहीं कि तुम हो कौन ?'', कहता हुआ भाग जाने के लिए मुड़ा।

मुरारी ने तुरंत उसकी बैसाखी छीन ली और जब वह लंगड़ाता हुआ नीचे गिरा तब उसकी पीठ पर पैर रखकर कहा, ''मैं बिन मूठ की तलवार का धीर हूँ। महामुनि को ही तुम आहार बनाना चाहते थे। किसी भी हालत में तुम्हारी जान लिये बिना तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। इस तलवार से पहले तुम्हारे दोनों पैर काट दूँ या तुम्हारा सर ?'', तीव्र स्वर में उसने पूछा।

भय के मरे काँपते हुए राक्षस ने कहा, ''ये दोनों काम मत करो। जो मदद तुम माँगोगे, करूँगा। मैं राक्षस हूँ, पर लंगड़ा हो जाने के कारण तेज़ी से चल नहीं सकता, पर हवा में उड़ सकता हूँ, पानी में तैर सकता हूँ। कहो तुम्हें क्या चाहिए?''

मुरारी सोच में पड़ गया। उसने सुन रखा था कि इन जंगलों और पर्वतों के पीछे एक बहुत बड़ा राज्य है और वहाँ का राजा साहसी युवकों को सेना में नौकरी देता है और अच्छा वेतन भी।

इसलिए उसने राक्षस से कहा, ''मुझे इन जंगलों और पहाड़ों के पीछे जो राज्य है, उस राज्य में ले जाओ!'' मुरारी राक्षस की पीठ पर बैठ गया और राक्षा आकाश में उड़ता हुआ गया। किन्तु राक्षस का इरादा कुछ और ही था। वह

किसी न किसी प्रकार मुरारी का अंत कर देना चाहता था। पहले वह पेड़ों पर से होता हुआ उड़ने लगा। फिर पहाड़ों के ऊपर गया और अचानक हवा में पलट गया। मुरारी एक पेड़ पर जा गिरा। उसने उसकी टहनी पकड़ ली और ज़मीन पर कूद पड़ा। इस कारण उसे कोई हानि नहीं पहुँची।

वहाँ चोरों का एक गिरोह बैठा हुआ था। वे कुल पाँच लोग थे। उनके सामने कीमती पोशाक पहने एक युवक था। उसके हाथ-पैर रस्सियों से बंधे हुए थे। पेड़ की टहनियों के बीच में से अकस्मात प्रत्यक्ष हुए मुरारी को देखकर वे अवाक् रह गये।

मुरारी उनसे कुछ कहने ही वाला था कि इतने में गिरोह के आदमियों में से एक ने कहा, "डरने की कोई बात नहीं। यह भी कोई आदमी ही है!"

चोरों के सरदार ने कहा पहले इसे पकड़ो और पता लगाओ कि इसके पास क्या-क्या चीज़ें हैं ?व

एक चोर ने मुरारी का पूरा बदन ढूँढ़ डाला और उसकी थैली भी खोलकर देखी। उसे थैली में छोटे-छोटे पत्थर मात्र दिखायी पड़े। जब उसने औरों से यह बात कही तो उनको लगा कि यह कोई पागल होगा। वे ज़ोर से हंस पड़े। फिर भी गिरोह के सरदार को संदेह हुआ। वह सोचने लगा कि यह चाहे कितना भी पागल क्यों न हो, कमर में तलवार लटकाये क्यों घूम-फिर रहा है ?

उसने मुरारी से कहा, "यह जो सामने बैठा है, वह पहाड़ों के उस पार के राज्य का युवराज है। हम जब खाना खा रहे थे, तब इसने हम पर अचानक धावा बोल दिया। हम डर गये और भागने लगे, क्योंकि हमारा अनुमान था कि इसके साथ सेना भी होगी। अकेले ही इसने हमारा पीछा किया और हममें से एक को मार भी डाला। इसकी तलवार भी टूट गयी थी। हमने इसे घेर लिया और पकड़ लिया। यह अब हमारे कब्जे में है। ज़रा अपनी तलवार देना। इससे पहले इसका सिर काटेंगे, फिर तुम्हारा।"

"तुम लोग बिल्कुल बेवकूफ़ लगते हो। तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कितना बड़ा शक्तिमान हूँ। तुम जैसे कितने ही लुटेरों को मैंने पत्थरों में बदल दिया और थैली में ड़ाल दिया।"

चोरों के सरदार ने उसका मज़ाक उड़ाते हुए पूछा, "मानता हूँ, तुमने उन्हें पत्थरों में बदल दिया और थैली में डाल दिया!"

"तुम जैसे लुटेरों को पत्थरों में जब बदल देता हूँ, तब तुम लोगों को कोई दर्द नहीं होता,

कोई पीड़ा नहीं होती। इसलिए इन्हें अपनी गुफ़ा में ले जाऊँगा और मंत्र-तंत्रों से भरी एक हांडी में डाल दूँगा।

हाँडी के नीचे आग सुलगती रहेगी और तब जाकर तुमको मालूम होगा कि नरक क्या होता है और नरक यातना क्या होती है? दर्द और पीड़ा से कराहोगे, चीखोगे, चिल्लाओगे, हाय-हाय करते रह जाओगे। तुम्हें कोई बचा नहीं पायेगा।'' दांत पीसते हुए मुरारी ने कहा।

उसकी बातों से चोर डर के मारे काँपने लगे। मुरारी ने उनके चेहरों पर स्पष्ट दिखाई देते हुए भय को देख लिया। उसने कहा, ''मैं महामांत्रिक हूँ। तुम मूर्ख लोग अब तक यह जान चुके होंगे। अब रही मेरी यह तलवार। यह निरायुधों पर कभी वार नहीं करती।'' कहता हुआ वह उन्हें डराने के उद्देश्य से मन ही मन मंत्र पढ़ने लगा।

फिर कहा, ''अपनी मंत्रशक्ति से इसे मैंने बिन मूठ की तलवार बना दी।'' उसने म्यान से बिन मूठ की वह तलवार बाहर निकाली।

उसे देखते ही ''मांत्रिक! महामांत्रिक!!'' कहकर चिल्लाते हुए पाँचों चोर वहाँ से भाग गये।

मुरारी ने बंधे युवराज की रस्सियाँ काट डाली और उसे मुक्त कर दिया। उसने युवराज से कहा, ''मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि आपको इन लुटेरों से बचा पाऊँगा। यह सबकुछ उस महामुनि की कृपा है।''

युवराज ने मुस्कुराकर कहा, ''उस महामुनि के बारे में तो मुझे कुछ नहीं मालूम, परंतु तुम्हारे बारे में सबकुछ जान गया। तुम चतुर हो, साहसी हो। मैं हृदयपूर्वक तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ। इसी क्षण से तुम मेरे परम मित्र हो। राजभवन पहुँचते ही तुम्हारे लिए आवश्यक सभी सुविधाओं का प्रबंध करूँगा। फिर तुम्हें प्रशिक्षण दिलाकर सेनाधिपति बनाऊँगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि तुम इसके योग्य हो।''

युवराज की बातों से संतुष्ट मुरारी ने मन ही मन कहा, ''मुनि का आशीर्वाद और पिता की इच्छा कभी बेकार नहीं जाते।''

मरने पर ही प्रशंसा

सावनपुर गाँव के समरस व सावित्री का बेटा था सारंग। वह दस साल की उम्र का था। घर का कोई भी काम, चाहे वह कितना भी छोटा ही क्यों न हो, करने से इनकार करता था। किसी का कहा सुनता भी नहीं था। वह बड़ा ही नटखट था। इसलिए उसे गाँव भर में नटखट सारंग कहते थे।

उसकी माँ अक्सर उससे कहा करती थी, ''सबसे अच्छा कहलाओ। नहीं तो तुम्हारी बदनामी होगी। सब लोग तुम्हें कंजूस पीतांबर कहेंगे। तुमको इस नाम से पुकारना मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगी।''

उसने इस कंजूस पीतांबर का नाम बहुतों से सुना। पहले उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन धीरे-धीरे उसमें इस पीतांबर से मिलने की इच्छा प्रबल होती गयी। उसने एक दिन अपनी माँ से पीतांबर के बारे में पूछा।

''वह कंजूस है, मक्खीचूस है। ब्याज का व्यापार करता है। कितने ही परिवारों को उसने बरबाद किया। उन्हें कहीं का न रखा। वैद्य से चिकित्सा करवाई और उसे पैसे नहीं दिये। गाँव में अकाल आया तो उसने जो अनाज छिपाकर रखा, उसे ज्यादा से ज्यादा दाम पर बेचा। गोय में एक पंडित का सम्मान हुआ तो उससे देखा न गया। उसने वहाँ एक बखेडा खड़ा कर दिया। मंदिर में प्रसाद लोगों में बांटा जाए तो उसका आधा भाग जबरदस्ती वही ले जाता है। कोई उसे प्रणाम करते हैं तो उसकी ग़लती ढूँढ़ निकालता है और उन्हें खरी-खोटी सुनाता है। उसके पास अधिकाधिक धन है, और लोगों को कभी-कभी इसकी ज़रूरत पड़ती है, इसलिए वह जो भी करे लोग सह लेते है। ऐसे आदमी से मिलने की इच्छा तुममें क्यों जगी?'' माँ ने अपने बेटे को फटकारते हुए पूछा।

माँ उसके बारे में इतना सब कुछ सुनने के

- कीर्ति नायक -

बाद उससे मिलने की इच्छा मुझमें और तीव्र हो गयी। किन्तु पीतांबर जिस गाँव में रहता है, वह उसके गाँव से बहुत दूर है।

एक दिन सारंग के घर पुरुपेम्तम नामक एक सज्जन आये। सब लोग उन्हें पुण्यात्मा पुरुषोत्तम कहा करते थे। सारंग के घर में उनकी बड़ी आवभगत हुई।

सारंग को माता-पिता से पुरुषोत्तम के बारे में बहुत बातें मालूम हुईं। उसे मालूम हुआ कि वे हर दिन कम से कम एक ग़रीब को खाना खिलाते हैं। ज़रूरतमंद की भरसक सहायता करते हैं। सबको हितोपदेश देते हैं और उन्हें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। इसी कारण उन्हें आतिथ्य देने गाँव के लोग आगे आते हैं।

यह जानकर सारंग को आश्चर्य हुआ कि पुरुषोत्तम और पीतांबर एक ही गाँव के हैं। उसने उनसे कहा, ''महाशय, मैंने सुना कि आप हमेशा अच्छे काम ही करते हैं और पीतांबर बुरे काम ही करता है। आप दोनों एक ही गाँव के हैं। आपके यहाँ आने के बाद ही मैंने आपका नाम सुना और आपके बारे में जाना। वह हमारे गाँव में नहीं आया, फिर भी मैंने उसका नाम बहुत बार सुन रखा है। मेरी समझ में नहीं आता कि संसार में अच्छाई महान है या बुराई?''

सारंग के इस प्रश्न से पुरुषोत्तम को लगा कि लड़का छोटा है, पर है समझदार। इसलिए उसकी पीठ थपथपाते हुए उन्होंने कहा, ''तुमने बहुत अच्छा सवाल किया। पर पहले तुम्हें एक बात बतानी है। लोगों का कहना है कि पीतांबर बुरा आदमी है। लोग यह भी कहते हैं कि मैं अच्छा आदमी हूँ। पर मैं इसका दावा नहीं करता। लोगों से मैं सुनूँ कि मैं बुरा आदमी हूँ तो अवश्य मुझे दुःख होगा। लोगों से मुझे अच्छा कहते हुए सुनकर खुशी होती है। लोगों का उसे बुरा कहने या मानने में ही शायद पीतांबर को आनंद मिलता होगा। शायद उसे यह पसंद नहीं कि लोग उसे अच्छा कहें''।

सारंग ने एक पल रुककर कहा, ''अगर यही सच है तो इसका यह मतलब हुआ कि वह सचमुच ही खुश है। यह तो जानी हुई बात है कि आजसे ज्यादा वह प्रख्यात है। तो क्या प्रसिद्ध होने के लिए अच्छे कामों से ज्यादा बुरे काम करने चाहिए?''

''सुगंध आनंद पहुँचाती है, पर उसकी व्याप्ति

सीमित है। ताड़ी अगर गाढ़ी हो, तीखा हो तो उसकी गंध बहुत दूर तक फैलती है। किन्तु लोग उसे सूंघना नहीं चाहते, नाक बंदकर लेते हैं। तुम्ही निर्णय कर लो कि इनमें से तुम्हें कौन-सा पसंद है?'' पुरुषोत्तम ने हंसते हुए कहा।

सारंग ने इसके बाद बहुत सोचा-विचारा और बात उसकी समझ में आयी। इतने में पुरुषोत्तम ने सारंग के माता-पिता को उसके और उनके बेटे के बीच में हुए वार्तालाप का विवरण दिया। तब सारंग की माँ ने उनसे कहा, ''आपने मेरे बेटे से सब कुछ बताकर अच्छा किया। इसकी शरारतें हमसे सही नहीं जा रही हैं। आपकी बातों से कम से कम वह सुधर तो जायेगा।''

''केवल बातों से कोई नहीं सुधरता। अब मैं गाँव लौट रहा हूँ। दो दिनों में वापस आऊँगा। अपने बेटे को मेरे साथ मेरे गाँव भेजियेगा। एक बार वह पीतांबर को देख ले। गंदगी के प्रति नफ़रत पैदा होनी हो तो उस गंदगी के नज़दीक से देखना चाहिए'', पुरुषोत्तम ने कहा।

सारंग के माँ-बाप उसे पुरुषोत्तम के साथ भेजने के लिए राजी हुए। सारंग को इस बात पर खुशी हुई कि उसे पीतांबर से मिलने का मौका मिल रहा है। जिस दिन वे गाँव गये, ठीक उसी दिन पीतांबर की मृत्यु हो गयी। लोग आपस में इसी विषय को लेकर बात कर रहे थे। सारंग ने ध्यान लगाकर ये बातें सुनी।

''कंजूस है, मक्खीचूस है। पर सच कहा जाए तो यह पद्धति ही सही पद्धति है। ज़रूरत के समय पर किसी एक ने भी मेरी मदद नहीं की, एक भी रुपया नहीं दिया। उल्टे यह कहते हुए मेरी हंसी

उड़ाने लगे कि जब इसके पास धन था, फालतू खर्च कर दिया। बेवकूफ़ है यह बेवकूफ़। ऐसे लोगों की सहायता करना भी पाप है। पीतांबर पुण्यात्मा है। धन अपात्र को, नालायक़ को दान में नहीं दिया'' एक ने कहा।

''मैंने भी उसे खूब गालियाँ दीं क्योंकि उसने कान ऐंठकर मुझसे मूल और ब्याज वसूल किया। वह मेरे लिए बड़ा ही कड़ुवा अनुभव था। मैंने उस समय से किसी से भी कर्ज़ नहीं लिया। उस महानुभाव की वजह से ही मैं यह सत्य जान गया कि कर्ज लेना गुनाह है। कर्ज़ लेने की आदत पड़ जाने से आदमी की ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है। अब मैं सुधर गया हूँ। इसका सारा श्रेय पीतांबर को ही जाता है'' दूसरे ने कहा।

पुरुषोत्तम, सारंग को लेकर पीतांबर के घर गया। घर के सामने एक भी आदमी नहीं था। अंदर से रोने की धीमी आवाज़ सुनायी पड़ रही है।

यह दृश्य देखकर चकित सारंग से पुरुषोत्तम ने कहा, ''अब घर चलें?'' दोनों घर लौटने निकल पड़े।

घर पहुँचने के बाद सारंग ने पुरुषोत्तम से पूछा, ''पीतांबर को लेकर गलियों में कुछ लोग बातें तो कर रहे हैं, परंतु उस मरे आदमी को देखने एक भी उसके घर क्यों नहीं आया?''

पुरुषोत्तम ने हंसकर कहा, ''मरे आदमी को लेकर उसकी अच्छाई की प्रशंसा करना हमारी रीति है। जब वह पीतांबर ज़िन्दा था, किसी ने भी उसके बारे में एक भी अच्छा शब्द नहीं कहा। किसी के बारे में अच्छा सुनना हो, तो मौत ही एकमात्र मार्ग है। साधारणतया अच्छाई और बुराई दोनों की प्रशंसा होती है। अच्छाई की प्रशंसा जीवित रहते हुए होती है तो बुराई की प्रशंसा मरने के बाद। सोचकर देखो, तुम्हें कौन-सी पद्धति अच्छी लगेगी?''

सारंग की समझ में अब सब कुछ आ गया। उसे लगा कि जीवित रहते हुए सबकी प्रशंसा का पात्र बनना चाहिए। वही उत्तम पद्धति है। उसी में सच्चा आनंद है। घर लौटने के बाद जो अच्छा परिवर्तन उसमें आया, उससे उसके माता-पिता बहुत आनंदित हुए।

महाभारत

युधिष्ठिर ने भोज देकर सभी ऋषियों को तृप्त किया और कृष्ण की ओर से अनेक दान किये। परीक्षित को कृपाचार्य के शिष्य के रूप में सौंप दिया। अपने मंत्रियों को बुलाकर बताया कि वह महा प्रस्थान करने जा रहे हैं। मंत्रियों ने आपत्ति उठाई, पर उन्हें विभिन्न उदाहरणों द्वारा समझाया।

इसके उपरांत पांचों पांडव और द्रौपदी ने अपने समस्त आभूषण उतारे, और बल्कल पहन लिये। अपनी समस्त अग्नियों को जल में मिला कर चल पड़े। उस हालत में उन्हें देखने पर नगर की नारियों को। वह घटना याद आई, जब पांडव जुएँ में हारकर बनवास के लिए चल पड़े थे, तब सभी नारियाँ रो पड़ीं। मगर पांडव ज़रा भी चिंतित नहीं हुए।

पांडव जब नगर को पार कर जा रहे थे, तब एक कुत्ते के साथ कुल सात प्राणी महा प्रस्थान के लिए निकल पड़े। उनके इस उद्देश्य को बदलने के ख्याल से कुछ नागरिकों ने उनका अनुसरण किया, आखिर विवश हो वापस लौट आये। द्रौपदी के साथ पांडवों के चले जाते ही उलूपी गंगा नदी के भीतर तथा चित्रांगदा मणिपुर चली

गई। पांडवों की अन्य पत्नियाँ परक्षित के पास ही रह गई।

प्रारंभ में पांडव पूर्वी दिशा में एक के पीछे एक चलते यात्रा करते रहे। उन लोगों ने अनेक देश और नदियों को पार किया, कई दिन पश्चात ताहित्य नामक समुद्र के तट पर पहुँचे। अर्जुन तब तक अपने गांडिव तथा अक्षय तूणीर को साथ लिए हुए -था।

मार्ग के मध्य में अग्निदेव ने पर्वत जैसा शरीर धारण कर प्रत्यक्ष हो कहा- "हे पांडव, मैं अग्निदेव हूँ! अर्जुन का इस वक़्त गांडिव के साथ कोई प्रयोजन नहीं है। उसे अर्जुन को त्यागना होगा। यह तो वरूण का अस्त्र है, अत: इसको वरूण को सौंपना है।"

अर्जुन को अन्य लोगों ने भी समझाया, इस पर उसने अपने गांडिव तथा अक्षय तूणीरों को समुद्र में फेंक दिया। तब अग्निदेव भी अदृश्य हो गए।

इसके बाद पांडव दक्षिण की ओर चल पड़े। समुद्र के किनारे में चलकर पश्चिम की ओर मुड़े। उन्हें समुद्र में डूबा हुआ द्वारका नगर दिखाई दिया। वहाँ से वे लोग उत्तर की ओर चल पड़े। तब उन्हें हिमालय पर्वत दिखाई दिये। उन्हें पार करके जाने पर मेरू पर्वत दिखाई दिया।

पांडव चल ही रहे थे कि रास्ते में द्रौपदी मर कर गिर पड़ी। भीम ने युधिष्ठिर को यह समाचार दिया, लेकिन युधिष्ठिर पीछे मुड़कर देखे बिना आगे बढ़ा।

इसके थोड़ी देर बाद सहदेव गिर गया। इस प्रकार क्रमश: नकुल और अर्जुन के भी गिर जाने का समाचार भीम ने युधिष्ठिर को दिया। फिर भीम भी अपने गिर जाने का समाचार सुनाकर गिर पड़ा। युधिष्ठिर पीछे मुड़कर देखे बिना आगे बढ़ता गया। कुत्ता युधिष्ठिर के पीछे चला जा रहा था।

थोड़ी देर में इंद्र अपने रथ पर बड़ी ध्वनि के साथ आ पहुँचा और युधिष्ठिर से निवेदन किया कि वह उस रथ पर सवार हो जाय! इस पर युधिष्ठिर ने इंद्र से कहा- "मेरे सभी भाई मर गये हैं। उन्हें भी मेरे साथ आना होगा। द्रौपदी भी हमारे साथ हो! मेरी इस शर्त को आप को स्वीकार करना होगा। उनके बिना मैं स्वर्ग में जाना नाहीं चाहूँगा।"

इसके उत्तर में इंद्र ने यों कहा- "वे सब इसके पूर्व ही अपने- अपने शरीर त्याग कर स्वर्ग में

पहुँच गये हैं। लेकिन तुम्हें शरीर के साथ स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इसलिए चलो मेरे साथ।''

''तब तो यह कुत्ता बड़े ही विश्वास के साथ चला आ रहा है। इसे भी स्वर्ग में ले जाना होगा। इस कुत्ते को छोड़ अकेले मैं स्वर्ग में जाना नहीं चाहूँगा।'' युधिष्ठिर ने अनुरोध किया।

''तुम मेरे समान व्यक्ति होकर स्वर्ग में जा रहे हो। तुम्हें इस कुत्ते से क्या मतलब है? इसको छोड़ दो।'' इंद्र ने कहा। पर युधिष्ठिर ने न माना। इंद्र ने समझाया कि कुत्तों को स्वर्ग में स्थान नहीं है, फिर भी युधिष्ठिर ने अपना हठ नहीं छोड़ा।

इस पर कुत्ते के रूप में स्थित यमराज ने युधिष्ठिर के सामने प्रत्यक्ष होकर कहा-''बनवास के समय मैंने एक यक्ष के रूप में तुम्हारी परीक्षा ली। इस बक्त कुत्ते के रूप में मैंने फिर तुम्हारी परीक्षा ली। तुम्हारे बराबर का व्यक्ति स्वर्ग में भी कोई नहीं है। तुम शरीर के साथ उत्तम लोकों को प्राप्त कर सकोगे।''

इसके बाद इंद्र, यमराज, मरूत, अश्वनी देवता तथा अन्य देवताओं ने भी युधिष्ठिर को रथ पर बिठाया और वे सब अपने अपने विमानों में उनके साथ चल पड़े।

''अनेक राजर्षि उत्तम लोकों में आये, लेकिन वे सब शरीर के साथ स्वर्ग में आनेवाले युधिष्ठिर की बराबरी नहीं कर सकते।'' नारद ने कहा।

''चाहे सुख हो या दु:ख, मेरे भाइयों के बिना मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है।'' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

इसके उत्तर के रूप में इंद्र ने कहा-''राजन, उत्तम लोकों में जानेवाले तुम मानव संबंधों को क्या नहीं त्यागते? मैं असली बात बता रहा हूँ, सुनो! तुम्हारे भाई उत्तम लोकों को प्राप्त नहीं हुए

हैं। इस स्वर्ग को, देवता, सिद्ध तथा देव ऋषियों को तो देख लो?''

''मैं अपने भाइयों को छोड़कर अलग नहीं रह सकता। मेरे भाई, द्रौपदी और हमारे पुत्र-ये सब जहाँ हों, मैं भी वहीं जाऊँगा।'' युधिष्ठिर ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

स्वर्ग में पहुँचने पर युधिष्ठिर ने देवताओं के बीच एक उत्तम आसन पर बैठे हुए दुर्योधन को देखा। वह अत्यंत प्रकाशमान था। इस पर युधिष्ठिर के मन में ईर्ष्या पैदा हुई, साथ ही उसे इस बात का आश्चर्य भी हुआ कि ऐसे पापी को स्वर्ग कैसे प्राप्त हुआ। वहाँ से पीछे मुड़कर बोला- ''लोभी इस दुर्योधन के साथ मुझे स्वर्ग केसुखों की कतई आवश्यकता नहीं।''

नारद ने मुस्कुराकर कहा-''राजन्, स्वर्ग में पुराने वैमनस्य को त्यागना होगा। दुर्योधन ने वीर की मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग पा लिया है।''

''यदि समस्त प्रकार के पाप करनेवाले इस दुर्योधन को स्वर्ग की प्राप्ति हो जाय तो मैं जानना चाहता हूँ कि महान पुण्यात्मा मेरे भाइयों को कौन से उत्तम लोक प्राप्त हुए हैं? धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु तथा उप पांडव कहाँ पर हैं? मैं उन्हें शीघ्र देखना चाहता हूँ।'' युधिष्ठिर ने नारद से कहा।

इसके बाद कर्ण तथा अपने हितैषी राजाओं को, जिन लोगों ने उसके वास्ते युद्ध में प्राण अर्पित किये थे, स्वर्ग में न देख युधिष्ठिर के मुँह से ये शब्द सुनकर देवताओं ने कहा-''तब तो चलो उनके पास! इंद्र ने हमें आदेश दिया है कि आप की इच्छा की पूर्ति करें!''

तब देवताओं ने एक दूत को बुलाकर समझाया कि युधिष्ठिर जिन-जिन व्यक्तियों को देखना चाहते हैं, उन्हें दिखावे! दूत युधिष्ठिर को साथ लेकर शेष पांडवों को दिखाने केलिए चल पड़ा।

वे जिस मार्ग से होकर जा रहे थे, उस मार्ग में पापी थे, मार्ग चलने योग्य न था। सारे मार्ग में खून और मांस छितरा पड़ा था। उन पर मक्खियाँ तथा मच्छर भिनभिना रहे थे। चारों ओर केश, हड्डियाँ, कीड़े व ज्वालाऐं भयंकर दिखाई दे रही थीं। रास्ते में खेलने वाले पानी की नदी बह रही थी।

''हमें इस प्रकार और कितनी दूर चलना है?'' युधिष्ठिर ने अपने आगे चलनेवाले देवदूत से पूछा।

''लगता है कि तुम थक गये हो। चलो, लौट जायें! आगे चलने केलिए रास्ता तक नहीं है।'' देवदूत ने कहा।

युधिष्ठिर निराश हो गये, साथ ही दुर्गन्ध के कारण उसका सिर चकराने लगा था। इतने में कुछ स्वर अत्यंत दीन स्वर में बोल उठे- ''युधिष्ठिर! तुम्हारे आने से हमें थोड़ा सुख मालूम हो रहा है! तुम दो घड़ी यहीं ठहर जाओ।''

युधिष्ठिर ने उन कंठों से पूछा- ''तुम सब कौन हो? यहाँ पर क्यों हो?''

''मैं कर्ण हूँ! मैं भीम हूँ! मैं अर्जुन हूँ! मैं नकुल हूँ! मैं सहदेव हूँ! मैं द्रौपदी हूँ।'' यों उन कंठों ने उत्तर दिया।

यह उत्तर सुनकर युधिष्ठिर अपने मन में दुखी होने लगा- ''इन पुण्यात्माओं ने कौन-सा पाप किया है? कौन-सा पुण्य करके दुर्योधन स्वर्ग के सुखों का अनुभव कर रहा है? यह सब क्या है? क्या मैं सोता हूँ? या जागाता हूँ? या मैं पागल हो गया हूँ?'' इसके बाद युधिष्ठिर को देवता और धर्म पर बड़ा क्रोध आया। उसने सब को खूब कोसा! तब देवदूत से बोला- ''तुम जिस के दूत हो, उसके पास चले जाओ। उससे कह दो, मैं अपने भाइयों को छोड़ वहाँ पर नहीं आऊँगा। मेरे यहाँ रहने से कम से कम वे लोग थोड़े सुखी होंगे।''

देवदूत ने इंद्र के पास जाकर सारा समाचार सुनाया।

युधिष्ठिर दो घड़ियों तक वहीं रहा। इतने में इंद्र आदि देवता वहाँ पर आ पहुँचे। उनके आते ही वहाँ की चिल्लाहट जाती रही। साथ ही वैतरणी अदृश्य हो गई। सुखप्रद वायु बहने लगी। सर्वत्र सुगंध फैल गई। एक नया वायुमण्डल उत्पन्न हुआ।

इंद्र ने युधिष्ठिर से कहा- ''युधिष्ठिर ! देवता

तुम्हारे व्यवहार पर प्रसन्न हुए हैं। अब हमारे साथ चलो ! तुमने सिद्धि प्राप्त की है। तुम्हें तथा तुम्हारे भाइयों कों उत्तम लोक प्राप्त होने जा रहे हैं। नाराज़ मत होओ! प्रत्येक राजा को एक बार अवश्य नरक के दर्शन करने पड़ते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो पाप और पुण्य करता है, वह यदि पहले पुण्य का फल भोगता है तो अंत में उसे पाप का फल भी भोगना पड़ता है। इसी प्रकार जो पहले पाप का फल भोगता है, वह बाद में पुण्य का फल भोगता है। जो व्यक्ति पाप कम करता है, वह पहले नरक भोगता है। इसीलिए मैंने तुमको पहले नरक में भेजा। तुम्हारे भाई तथा द्रौपदी ने भी जो थोड़ा पाप किया था, उसका फल नरक भोग लिया है। उन्हें पाप से मुक्ति प्राप्त हो गई है। अब तुम्हारे सभी प्रिय व्यक्ति स्वर्ग में रहेंगे। तुम कर्ण के बारे में भी चिंतित हो !

उसे भी स्वर्ग प्राप्त हो गया है। तुमने अन्य राजाओं से कहीं अधिक पुण्य प्राप्त किया है। हरिश्चंद्र, मांधाता, भगीरथ तथा दुष्यंत के पुत्र भगीरथ ने जो स्थान प्राप्त किया है, वही स्थान तुम्हें प्राप्त होगा। देखो, यही आकाश गंगा है। इसमें स्नान करोगे तो तुम्हारे सभी मानवीय भाव जाते रहेंगे! इसलिए पहले तुम इस गंगा में स्नान करो।''

युधिष्ठिर आकाश गंगा में अपने मानव शरीर को त्याग कर सीधे अपने भाइयों के पास चला गये। वहाँ पर उसे कृष्ण दिखाई दिये। कृष्ण अब भी पहचानने योग्य रूप में ही थे। अर्जुन कृष्ण के साथ था। युधिष्ठिर को देखते ही आदर के साथ दोनों उसके निकट आये।

एक और स्थान पर सूर्य की भाँति प्रकाशित होते कर्ण दिखाई दिया। भीम अपने पूर्व रूप में ही मरूत गणों के बीच दिखाई दिया। इसी प्रकार नकुल और सहदेव अश्वनी देवताओं के स्थान में दिखाई दिये।

इसके बाद इंद्र ने युधिष्ठिर को द्रौपदी, उसके पुत्र, अभिमन्यु, धृतराष्ट्र, राजा पांडु, कुंती, माद्री. भीष्म, द्रोण, तथा अन्य योद्धाओं को दिखाकर उनके बारे में विवरण बताया। **- समाप्त**

गरुड़ा ने प्रत्येक समूह को अचानक एक साथ हमला करके हराया। गरुड़ा के आठों आदमी उसी की तरह पोशाक पहने हुए थे।

राज्य सभा में नरेन्द्रदेव ने डींग मारी कि उसके सिपाही सफल रहे।
सेनापति जी ! क्या उन्होंने गरुड़ा को पकड़ लिया? वह है कहाँ?

मैं तुम्हें अधिक जानकारी नहीं दे सकता। शीघ्र ही तुम गरुड़ा को खून में लथपथ देखोगे।
उस रात सेनापति ने गरुड़ा को अपने शयन कक्ष में देखा। उसने अंगरक्षकों के लिए ताली बजायी।

कोई आवश्यकता नहीं सेनापतिजी ! वे लोग एक कदम भी आगे नहीं बढ़ेंगे।

यदि तुम बहादुर हो तो मेरे साथ युद्ध करो। चलो, बाजी हो जाए।

नरेन्द्रदेव ने युद्ध किया, गरुड़ा उसे अचम्भित करता रहा।

गरुड़ा यहाँ-वहाँ और सभी ओर है।
शीघ्र ही नरेन्द्रदेव बेहोश हो गया।

उसी समय पता चला कि गरुड़ा को नाव में देखा गया है। तो आठों अधिकारी उसी तरफ झील की ओर भागे।

उसमें से एक ने कहा कि गरुड़ा का नकाब उतारने का कार्य सेनापति पर छोड़ा दिया जाय। और सभी तैयार हो गए।

परिवर्तन

प्राचीन काल में कलिंग नगर में महाजन नामक एक बड़ा व्यापारी था। वह न केवल व्यापार करने में कुशल था, बल्कि न्याय के निर्णय में भी बहुत मशहूर था।

कई लोग आपसी झगड़ों का निपटारा करने के लिए दूर-दूर से उसके पास आते और उसके निर्णय को मान लेते थे। इस तरह लोगों के बीच उसका नाम ख़ूब फ़ैल गया था।

महाजन के शंभु नामक एक पुत्र था। पिता का एक भी गुण उसे प्राप्त न था, लेकिन एक धनवान के पुत्र के बुरे लक्षण जैसे शराब पीना, जुआ खेलना आदि गुण उसमें भरपूर थे। उसकी इन बुरी आदतों को दूर करने के लिए महाजन ने जो हितवचन कहे, सब बेकार साबित हुए। पिता के यश को शंभु ने अपनी बुरी आदतों के कारण मिट्टी में मिला दिया।

महाजन को अपने बेटे की चिंता सताने लगी। वह इकलौता पुत्र था, इसलिए महाजन उसे कठोर दण्ड न दे पाया। वैसे उसका दिल ख़राब न था।

पिता के प्रति उसके दिल में श्रद्धा और प्रेमभाव भी था। मगर पिता के हितवचनों पर वह कान न देता था। उल्टे वह दुर्गुणों का गुलाम बन चुका था।

महाजन ने ख़ूब सोच-विचार कर एक निर्णय कर लिया। वह यह था कि थोड़े समय तक वह शंभु से दूर रहे तो उसका आश्रय न पाकर शायद उसका दिल बदल जाय।

एक दिन महाजन ने शंभु से कहा-''सुना बेटा ! मैं समुद्री व्यापार करने दूर देशों में जा रहा हूँ, इसलिए मेरे पास जो कुछ धन है, सब मैं अपने साथ ले जाता हूँ। मैं बतला नहीं सकता कि मेरे लौटने में कितना समय लग सकता है।''

ये बातें सुन शंभु व्याकुल हो उठा। उसने

पच्चीस वर्ष पहले 'चन्दामामा' में प्रकाशित पुरानी कथा

पूछा-''धन नहीं हो तो मेरा गुज़ारा कैसे होगा?''

''हाँ, बेटा ! मैं तो इसी के वास्ते जा रहा हूँ। धन कमाने के लिए भी तो पूँजी चाहिए? फिर भी तुम चिंता मत करो। तुम्हें जो कुछ धन चाहिए, वह मेरे मित्रों से कर्ज ले लो। लौटने पर मैं चुकता कर दूँगा।'' यों समझा कर महाजन चला गया।

पिता के चले जाने पर शंभु को लगा कि उसे पूरी आजादी मिल गई है। वह और उत्साह के साथ दुर्गुणों में डूब गया। इसके लिए जो धन जाहिए था, उसके वास्ते जहाँ भी कर्ज मिला, उसने ले लिया।

लेकिन कुछ समय बाद व्यापारियों ने शंभु को कर्ज देने से इनकार किया। फिर भी शंभु ने परवाह नहीं की। घर के गहने व अन्य सामान बेच कर वह अपना ख़र्च चलाने लगा।

उन्हीं दिनों में शंभु के पास दो नाविक आये और बोले-''बाबू, क्या बतावे? कुछ दिन पहले तुम्हारे पिता की नाव समुद्र में डूब गई है। सारा माल समुद्र में चला गया है। हम दोनों जैसे तैसे जान बचा कर चले आये हैं।'' यों कहते वे आँसू बहाने लगे।

यह ख़बर सुनकर शंभु एकदम कांप उठा। उसकी समझ में न आया कि भविष्य में क्या होनेवाला है। लेकिन जल्द ही उसे अपनी हालत अनुभवपूर्वक मालूम हो गई।

महाजन की मृत्यु का समाचार जानकर नगर

अपने पिता के द्वारा लिये गये कर्ज जब शंभु चुका नहीं पाया, तब उसे यह संदेह पैदा हुआ। उसके पिता को इतने सारे कर्ज क्यों लेने पड़े? वे सब नकली पत्र होंगे। यह सोचकर शंभु ने विशेषज्ञों से उन पत्रों की जांच करके बताया कि उन पर जो हस्ताक्षर हैं, वे महाजन के द्वारा किये गये हैं।

के व्यापारी अपने कर्ज शंभु से वसूल करने लगे। उस कर्ज को चुकाने के लिए शंभु को अपने मकान को छोड़ सारी जायदाद बेचनी पड़ी। लेकिन कर्जदारों का तांता लगा रहा और नये-नये कर्जदार कर्ज वसूल करने आते ही रहे।

शंभु घबरा गया। उसने अपने को प्राप्त होनेवाले कर्जों की हिसाब-किताबें खोजनी शुरु कीं। वसूल करने के लिए काफ़ी कर्ज़ पड़े हुए थे। शंभु के मन में फिर से आशा जगी। उन कर्जों को वसूलने के लिए शंभु ने अपने नौकरों को भेजा, मगर एक भी कर्ज वसूल न हुआ। कर्जदारों ने कहला भेजा कि हमने कभी के वे कर्ज चुका दिये हैं और चुकते की रसीदें जो हमें महाजन से प्राप्त हैं, हमारे पास सुरक्षित हैं।

शंभु अपने पिता के कर्ज चुका न पाया। कर्ज़दारों ने पत्र लेकर उसके पास आना बंद किया। इसके साथ शंभु के पुराने मित्र भी उससे बचकर दूर भागने लगे।

आख़िर नगर का एक भी आदमी उसके साथ बोलने-चालने न आया। शंभु को लगा कि सबने उसको बिरादरी से बाहर किया है। वह बड़ा दुःखी हुआ। मानसिक दृष्टि से उसमें बड़ा परिवर्तन आया। उसने भूत कालीन जीवन को एक दुःस्वप्न माना और एक गरीब के रूप में जीने की आदत डाली। उसे लगा कि यही सच्ची ज़िन्दगी है! इसी में बड़ा सुख प्राप्त होने लगा।

उन्हीं दिनों में शंभु की वर्षगांठ पड़ी। वह अपनी वर्षगांठ मनाने का विचार न रखता था। मगर उसके विचार के विरुद्ध वर्षगांठ के प्रयत्न बड़े भारी पैमाने पर होने लगे। किन्हीं लोगों ने आकर सारे घर का अद्भुत ढंग से अलंकार किया। उसके निमंत्रण के बिना ही बन्धु एवं रिश्तेदार आ धमके!

सारे घर में खुशी की लहरों को देक शंभु

विस्मय में आ गया। नगर के सारे व्यापारी उसके घर आ बैठे।

शंभु को आश्चर्य के साथ आनंद भी होने लगा। इन सबका कारण तो उसे मालूम न हुआ, मगर उन सबको देखते ही उसे अपने पिता की याद हो आई और उसका दुःख उमड़ पड़ा। वह रोने लगा।

उसी वक़्त कहीं से आकर महाजन ने शंभु का आलिंगन किया। शंभु खुद अपनी आँखों पर विश्वास न कर पाया। वह अपने पिता को देखता ही रह गया।

''हाँ, बेटा! मैं ज़िन्दा हूँ। मैं हर क्षण तुम पर निगरानी करता रहा। तुममें परिवर्तन लाने के लिए मुझे यह नाटक रचना पड़ा।'' महाजन ने कहा।

शंभु ने अपने पिता के पैरों पर गिरकर कहा ''पिताजी! मैं आज तक आपके दिल को दुखाता रहा, यह बात मैं अभी समझ पाया। आइंदा मैं कभी ऐसा न करूँगा। मुझे माफ़ कीजिए।''

महाजन की आँखों में आनंद के अश्तु छलछला आये। इसे देख शंभु ने अपना मस्तक झुकाकर कहा-''मैं तो बदल गया हूँ, लेकिन अब हम लोग गरीब हैं। कर्जदार हमारी सारी संपत्ति ले गये हैं। हमारे कर्जदारों ने आपके हस्ताक्षरोंवाली रसीदें दिखाई हैं। आप भी उन रसीदों की जांच कीजिए!''

महाजन ने मुस्कुराते हुए कहा-''बे पत्र और सरीदें मेरे द्वारा तैयार की गयी हैं। बे सब जाली हैं। तुम्हारे पास धन न हो, इसके लिए मैंने यह सारा इंतज़ाम किया है। हमारा सारा धन मेरे ही पास है।''

शंभु इस बात के लिए बड़ा खुश हुआ कि अपनी सूझ-बूझ के द्वारा सारे धन का नाश होने से उसके पिता ने बचाया और तब से लेकर वह अपने पिता की सलाहों के अनुसार चलकर यशस्वी हो गया।

समाचार झलक

अब कम झुकाव

पिसा की झुकी हुई मिनार को ४० से.मी. सीधा करने में लगभग १० वर्ष लग गए। जब पुनः प्राप्ति कार्य आरम्भ किया गया था तो यह मिनार लम्बवत से १३ फीट दूर थी। अब इसका झुकाव मात्र उतना ही है जितना आज से ३ शताब्दी पूर्व था। मिनार बारहवीं शताब्दी के सातवें दशक में बनकर तैयार हुई और तभी से वह झुकना आरम्भ हो गई। विश्व के नौ महाआश्चर्यों में से इटली का यह एक मिनार है, जिसकी हालत को देखते हुए प्राधिकरण ने १९९० में पर्यटकों का प्रवेश रोक दिया था। परन्तु अप्रैल माह के प्रथम सप्ताह में अधिकारियों की एक घोषणा के अनुसार शीघ्र ही यह मिनार पुनः पर्यटकों के लिए खोल दी जाएगी। प्रवेश शुल्क १२ यू.एस. डॉलर निर्धारित किया गया है, जो लगभग ५०० रुपए के बराबर है।

भारत का गैगरीन को सम्मान

यूरी गैगरीन को विश्व प्रथम अंतरिक्ष यात्री के रूप में जानता है। इस वर्ष १२ अप्रैल को इस ऐतिहासिक क्रान्ति की चालीसवीं वर्षगाँठ है। भारत गैगरीन के सम्मान में एक डाक-टिकट जारी कर रहा है। आकाश के आश्चर्यों को एकत्रित करने के लिए यूरी गैगरीन ने १२ अप्रैल १९६१ में वोस्टोक-१ में सवार होकर १०८ मिनट तक पृथ्वी का चक्कर लगाया। यह यूरी गैगरीन एक समय में किसान-बालक थे और बाद में चलकर अंतरिक्ष में जानेवाले प्रथम व्यक्ति बने जिनके द्वारा लक्षित साहसिक कार्यों को २०वीं शताब्दी में मानव की महान लक्ष्य प्राप्ति कहा गया।

उसे डॉट काम बुलाएं

बहुत सारी ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि लोगों ने अपने जीवन का आधा समय व्यतीत करने के बाद अपना नाम बदल दिया है। यह या तो अधिक प्रसिद्धि के लिए अथवा अंक शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र में विश्वास करके। इसी प्रकार जेरुसेलम के टॉमर क्रिसी जो एक कम्प्यूटर प्रोग्रामर हैं, ने अपना नाम बदलने का निश्चय किया। उन्होंने औपचारिक रूप से अपना नाम टॉमर डॉट काम रख लिया है। कृपया यह न समझे कि यह एक इन्टरनेट का पता है! इजराईल सरकार ने इस नाम को स्वीकार करके उन्हें पासपोर्ट तथा पहचान पत्र भी प्रदान कर दिया है।

पंखों पर चलना

१० वर्षीय गेय मैसन, पिंक फ्लोरिडा ग्रुप के प्रसिद्ध ड्रमिस्ट के पुत्र ने अपनी हाल ही की हवाई यात्रा पर बाई-प्लेन के पंखों पर खड़ा होने का कौशल दिखाया। गेय अब विश्व का सबसे कम आयु का विंग-वॉकर बन गया है।

स्पाईडरमैन सिंगापुर लौटा।

एलन रॉबर्ट फ्रांस के हैं और इस साहसी भूत की इच्छा है कि वह विश्व-विख्यात किसी सबसे ऊँची इमारत पर चढ़े। पिछले नवम्बर में वह सिंगापुर के एक बैंक की २१ मंजिली इमारत का चक्कर काटते हुए देखा गया। परन्तु वहाँ की पुलिस को विश्वास नहीं हुआ और वह अनुमति न प्राप्त कर सका। अब वह फिर सिंगापुर लौट आया है और एशिया के सबसे ऊँचे होटल को चारों तरफ से देख रहा है। एक बार वह तिथि तय करने के बाद पुलिस के पास जायेगा।

आप क्या सोचते हैं, वे लोग कह देंगे "हाँ शुरु करो!"

अपने भारत को जानो

प्रश्नोत्तरी

११ जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाया गया। गत फरवरी माह में भारत की १४वीं जनगणना सम्पन्न हुई। भारत की जनसंख्या की आपको सामान्य जानकारी क्या हैं?

१. पहली बार कब जनगणना हुई?
२. देश की जनसंख्या में १४ वर्ष के बच्चों की संख्या कितनी है?
३. किस राज्य में सबसे कम जन संख्या है?
४. कुछ जनसंख्या का सबसे अधिक प्रतिशत कौनसा आयु वर्ग है?
५. किस राज्य में सबसे अधिक मात्रा में आदिवासी हैं?
६. कुल जनसंख्या का कितना प्रतिशत ईसाई वर्ग है?
७. दो धर्मों के लोगों की संख्या पिछले दो दशकों से बढ़ती जा रही है। वे दोनों धर्म कौनसे हैं?
८. कौनसा शहर देश का सबसे अधिक जनसंख्यावाला शहर है?
९. कौनसे राज्य में सबसे अधिक छोटे शहर हैं?
१०. कौनसे राज्य में जनसंख्या वृद्धि सबसे कम हैं?
११. कौनसे राज्य में शहरी जनसंख्या का सबसे अधिक अनुपात है?
१२. कौनसे दो राज्यों ने उर्दू को द्वितीय कार्यालयी भाषा माना है?

(उत्तर अगले माह)

मई माह की प्रश्नोत्तरी का उत्तर

१. राष्ट्रीय झंडा।
२. राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी।
३. ई.एम.एस. नाम्बुदरी पाल। केरल के पूर्व मुख्यमंत्री जिन्होंने पूरे विश्व में पहली बार चुनाव में जीतने के बाद कम्यूनिस्ट पार्टी का नेतृत्व किया।
४. १८५२ में। जिन्हें सिन्दे दावकस कहा गया। पूरे एशिया में पहली बार डाक टिकट जारी किया।
५. १९३१ में नई दिल्ली के उद्घाटन के समय पर जिसमें ईण्डिया गेट, राष्ट्रपति भवन, संसद भवन के डाक टिकट।
६. १८ फरवरी १९११ को। ६,५०० तरह के .... किए गए। जो नैनी जेल तक ८ कि.मी. की दूरी थी।
७. डाक सूची क्रमांक - १५ अगस्त १९७२।
८. १८७३ में प्रथम डाक घर का संचालन करते हुए।
९. १८७३ में प्रथम डाक घर का संचालन करते हुए।
१०. भारत के चार अनाज इनवर्टेड हेड। केवल २४वास्तविक प्रतियाँ ही इन टिकटों की थी, जिन पर ब्रिटिश रानी का सिर छपा था।
११. महात्मा गाँधी।
१२. नई दिल्ली में।

कन्या विवाह

एक बार गोपीनाथ नामक एक पंडित कृष्णापुर अग्रहार में अपने दोस्त को देखने गया। दुपहर को भोजन कर लेने के बाद दोनों दोस्त आपस में बातें करने लगे। पास ही के घर से दो साल की एक बालिका वहाँ आयी। गोरी और हट्टी-कट्टी वह बालिका तुतला-तुतलाकर जब बातें करने लगी तब उस बालिका का पिता वहाँ आ पहुँचा।

गोपीनाथ को वह बालिका बड़ी ही अच्छी लगी। जब मालूम हुआ कि वहाँ आया हुआ सज्जन उस बालिका का बाप है, तो उसने उससे कहा, "अजी, आपकी बिटिया तो बिल्कुल बाल लक्ष्मी लगती है। मेरा एक एकलौता बेटा है। वह चार साल का है। बालकृष्ण की तरह दिखता है। जब ये दोनों बालिग़ हो जायेंगे, तब इनकी शादी कर सकते हैं। पर अब बात पक्की कर लेंगे तो बहुत अच्छा होगा"।

"क्या आप चाहते हैं कि अपनी बिटिया का विवाह एक बूढ़े से करूँ?" नाराजी से बालिका के पिता ने कहा।

गोपीनाथ की समझ में नहीं आया कि वह कहना क्या चाहता है। तब बालिका ने चुटकी में जब मेरी बेटी की उम्र बीस साल की होगी तब आपके बेटे की अम्र होगी चालीस। समझ लीजिए, मेरी बेटी की उम्र पच्चीस है तो आपके बेटे की उम्र होगी पचास। मैंने ठीक ही कहा न? क्या आप चाहते हैं कि मैं अपनी बेटी की शादी एक बूढ़े से करूँ?"

बालिका के पिता के अज्ञान व मासूमियत को देखकर गोपी चुप रह गया। - वरलक्ष्मी
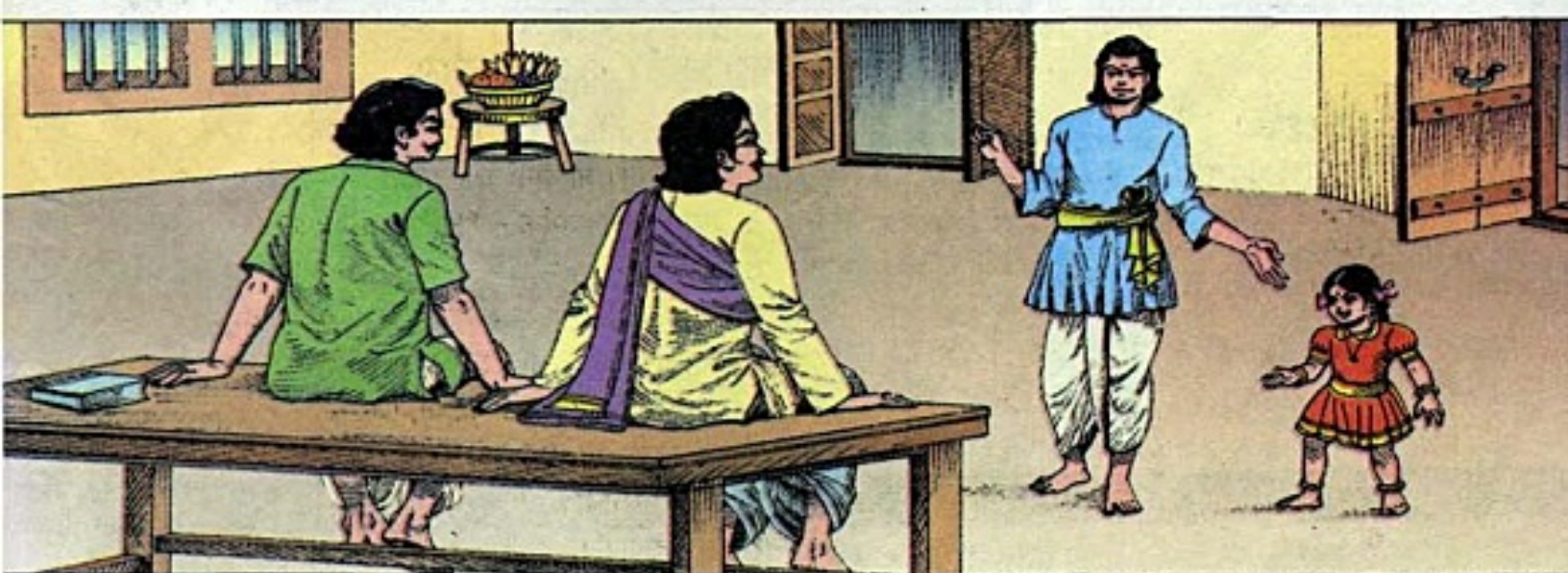
चित्र कैप्शन प्रतियोगिता

क्या तुम कुछ शब्दों में ऐसा चित्र परिचय बना सकते हो,
जो एक दूसरे से संबंधित चित्रों के अनुकूल हो?

तुम एक सामान्य पोस्टकार्ड पर इसे लिख कर इस पते पर भेज सकते हो :
चित्र परिचय प्रतियोगिता, चन्दामामा,
प्लाट नं. ८२ (पु.न. ९२), डिफेन्स आफिसर्स कालोनी, इकाडुथांगल, चेन्नई -६०० ०९७.
जो हमारे पास इस माह की २० तारीख तक पहुँच जाए । सर्वश्रेष्ठ चित्र परिचय पर १००/-रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा, जिसका प्रकाशन अगले अंक के बाद के अंक में किया जाएगा ।

बधाइयाँ

मई अंक के पुरस्कार विजेता हैं :
आलोक रंजन 'सोनल'
C/o. डॉ. कमल किशोर
किशोर आयुर्वेद क्लिनिक,
बस स्टैण्ड, दिधवारा
बिहार - ८४१ २०७.

विजयी प्रवृष्टी

''ढेरों खिलौने और ये फूलों का गुलदस्ता।
होठों पर फैलाने को मुस्कान, यह उपहार है कितना सस्ता।''

MAHA LACTO
MAHA MAZAA!

MAHA
LACTO
The Best Lacto in Town

India's largest selling sweets and toffees.